अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-42, अंक-11, 16-31 जनवरी, 2019

30 जनवरी : बापू निर्वाण-दिवस

'अगर मैं बीमारी से मरूं, भले ही वह फुंसी ही क्यों न हो, तुम दुनिया से चिल्ला-चिल्ला कर कहना कि मैं एक झूठा महात्मा था, भले ही लोग तुम्हें ऐसा कहने पर बुरा-भला कहें। तब मेरी आत्मा कहीं भी रहे, शांति से रहेगी। दूसरी ओर, अगर कोई मुझे गोली मार दे, जैसे कि उस दिन किसी ने मुझपर बम फेंकने की कोशिश की थी, और मैंने अगर उस गोली को बिना कराहे और राम का नाम होठों पर रखकर झेला, सिर्फ तभी तुम कहना कि मैं एक सच्चा महात्मा था। इससे भारतीय जनता का कल्याण ही होगा।' (29 जनवरी की आखिरी रात, मनु से)

विनम्र स्मरण
व
श्रद्धांजलि

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 42, अंक : 11, 16-31 जनवरी, 2019

संपादक
अशोक मोती
फोन : 0542-2440223

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह   भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. राष्ट्रीय स्वयं संघ, गांधी और भारत... 2
2. आजाद भारत का लक्ष्य... 3
3. एक अद्‌भुत जीवन-कलाधर... 5
4. गांधी ने एक ही चीज में सब साध... 6
5. कैसे हो हिन्दू समाज में क्रांति... 7
6. हे राम!... 9
7. अहिंसा-विवेचन... 11
8. महात्मा गांधी : महान विचारकों की... 12
9. क्रांति के बीज... 13
10. गांधीवादी चिन्तक चंद्रशेखर धर्माधिकारी 16
11. उपन्यास - 'बा'... 17
12. गंगाप्रसाद अग्रवाल : प्रेरणादायी... 19
13. कविता... 20

संपादकीय

राष्ट्रीय स्वयं संघ, गांधी और भारत

30 जनवरी, 1948।

यही वह काला दिन है जिस दिन राष्ट्रपिता गांधी को प्रार्थना सभा में जाते समय कट्टर हिन्दुवादी नाथूराम गोडसे ने गोली मारकर हत्या की। भारत को विश्व का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र बनाने के लिए सवा सौ साल जीने की गांधी की इच्छा का अंत भी इसी दिन हुआ। गांधी आज जीवित होते, तो वे 150 साल के होते। यदि सवा सौ साल गांधी जीवित रहते तो देश की दशा और दिशा दोनों अलग होती।

गांधी के खून की छींटें इन कट्टरवादियों पर इस तरह पड़े हैं कि दाग तमाम कोशिशों के बावजूद छुटाते नहीं छूट रहे। नाथूराम गोडसे कट्टर हिन्दुत्व का पहला आतंकी था, जिसने निहत्थे गांधी की निर्मम हत्या कर वीर बना—कायरों का वीर।

गांधी को किसी गुणगान और महिमामंडन की जरूरत नहीं है, क्योंकि गांधी व्यक्ति से अधिक बड़े विचार थे। यदि विश्व और मानवता को बचाना है तो उनके बताये रास्ते पर चलना, आज पूरे विश्व की मजबूरी है। हत्या से न तो गांधी और न ही उनके विचार कभी पराजित होंगे और न ही मरेंगे और मिटेंगे।

भले ही गांधी की हत्या में संघ-गोडसे का रिश्ता एक पहेली की तरह हो, किन्तु गांधी की हत्या के बाद संघ के लोगों ने खुशियां मनायी थीं। इस बात की पुष्टि देश के तत्कालीन उप-प्रधानमंत्री और गृहमंत्री सरदार पटेल और गांधी के प्रथम सत्याग्रही संत विनोबा—दोनों ने की है। गोडसे संघ का सदस्य नहीं है, इसलिए इस घटना में संघ की संलिप्तता नहीं है, यह इस बात पर आधारित है कि संघ अपने सदस्यों के लिए कोई रजिस्टर नहीं रखता। लेकिन गांधी के प्रति कट्टरवादियों की सख्त नफरत, उनका हिंसा में विश्वास और गांधी को बार-बार मारने के प्रयास की परिणति ही गांधी की हत्या थी। हिन्दुत्ववादियों द्वारा उछाले गये पाकिस्तान को दिये जाने वाले 55 करोड़ रुपये का सवाल हो या ऐसे अन्य सारे सवाल, कब के नितांत खोखले साबित हो चुके हैं। कट्टरवादियों को चुनौती देते गांधी के विचार तब भी थे और आज भी हैं। दूसरी ओर कट्टर हिन्दुत्ववादियों का समाज में व्याप्त विषमता, शोषण और अंधविश्वास का खुला समर्थन आज भी है। गांधी ने संपूर्ण भारतवासियों को एकजुट करने की कोशिश की किन्तु संघ तब भी और आज भी सिर्फ हिन्दुओं का संगठन करने, यहां तक कि भारत को हिन्दू राष्ट्र बनाने की जुगत में रहा है। संघ ने कभी भी धर्म में गलत तत्त्वों से संघर्ष नहीं किया, चाहे वह सवाल जाति व्यवस्था का हो, नारी स्वतंत्रता का हो या अंधविश्वास का। संघ के विपरीत गांधी अस्पृश्यता निवारण के लिए कितने प्रयास किये, जो देशवासियों के मन को झकझोर दिया, सर्वविदित है। स्वतंत्रता आंदोलन में लाखों औरतों को पहली बार परदे से निकालकर सड़कों पर जुलूसों में ले गये।

ऐसे गांधी की कोई हत्या करता है, चाहे वह व्यक्ति हो या संगठन, उसके सोच का पता चलता ही है। गांधी की राजनीति यह थी कि सभी भारतीयों में सहयोग हो और एकता हो, इसी के बल पर अंग्रेजों से स्वाधीनता ली जाय और उसके बाद एक मिले-जुले राष्ट्र का निर्माण किया जाय। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इन्हीं धारणाओं को अपने उद्देश्यों के रूप में स्वीकार किया था। डॉ. हेडगवार ने इसी राजनीति के विरोध में 1925 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की। इसके उलटे डॉ. हेडगवार ने हिन्दू एकता और राष्ट्रवाद का सिद्धांत खड़ा किया, जिसमें स्वाभाविक रूप से अल्पमत समुदायों, विशेषतः मुसलमानों के लिए कोई जगह नहीं थी।

पटेल के नेतृत्व में सरकार ने संघ के विरुद्ध जो तथ्य प्राप्त किये थे, उसमें संघ को न केवल एक सांप्रदायिक संगठन माना गया बल्कि उसे प्रस्तावित संविधान का विरोधी भी बताया गया, जो गांधी-हत्या के बाद 11 सितंबर 1948 को उपप्रधानमंत्री सरदार पटेल द्वारा श्री गोलवलकर को लिखे पत्र में स्पष्ट होता है—"हिन्दुओं का संगठन करना और उसकी मदद करना एक बात है, किन्तु उनके कष्टों का मासूम और असहाय पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों से बदला लेना एक बिल्कुल दूसरी बात है।...उनके सारे भाषण सांप्रदायिक विष से भरे रहते हैं। हिन्दुओं की रक्षा के लिए यदि उन्हें उत्साहित और संगठित करना है तो उनके लिए उनमें जहर फैलाना जरूरी नहीं था। इस विष के अंतिम परिणाम के रूप में देश को गांधीजी के बहुमूल्य जीवन से हाथ धोने का दुःख उठाना पड़ा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लिए न तो सरकार, न लोगों में जरा-सी भी सहानुभूति रही।"

1949 में संघ पर से पाबंदी इस शर्त पर हटायी गयी थी कि वह केवल सांस्कृतिक क्रिया-कलाप तक ही सीमित रहेगा और राजनीति में कोई भाग नहीं लेगा। श्री गोलवलकर ने सरदार पटेल को संघ का यह लिखित संविधान प्रस्तुत किया था, उसमें यह आश्वासन दिया गया था।

गांधी के हत्या के बाद आज भी संघ ने जो अपनी गतिविधियां जारी रखी है, इससे पता चलता है कि देश के सत्ता-संचालन में वह स्टेयरिंग पर है। अल्पसंख्यकों, आदिवासी, दलित और महिलाओं पर अत्याचार बढ़े हैं। गाय की सुरक्षा के नाम पर भीड़तंत्र द्वारा लोगों की हत्याएं हो रही हैं, जो यह स्पष्ट करता है कि संघ की सोच जो पहले से रही है, उसमें जरा भी परिवर्तन नहीं हुआ। यानी संघ ने ऐसी हर स्थिति पैदा कर दी है कि जिन परिस्थितियों में संघ को पहले प्रतिबंधित किया गया था।

ऐसी परिस्थिति में गांधीवादियों को आमजन के साथ खड़ा होना होगा। क्योंकि आज गांधी का नाम लेकर सत्ता, कतिपय संगठन और पूंजीवाद द्वारा गांधी के विचारों को भी समाप्त करने का षड्यंत्र हो रहा है। आवश्यक है कि हम अपनी और लोगों की नैतिक व आत्मिक शक्ति को तीव्र कर अपनी विरासत को आगे ले जायें। हमें अपने जीवन में पुनः पुनः गांधी को उतारने और आत्मदर्शन की जरूरत है ताकि हम अपना आत्मबल बढ़ा सकें।

बापू को विनम्र श्रद्धांजलि! **–अशोक मोती**

आजाद भारत का लक्ष्य

❑ गांधी

मैं आजादी इसलिए नहीं चाहता कि मेरा बड़ा देश, जिसकी आबादी संपूर्ण मानव-जाति का पांचवां हिस्सा है, दुनिया की किसी भी दूसरी जाति, या किसी भी व्यक्ति का शोषण करे। मैं अपनी शक्तिभर अपने देश को ऐसा अनर्थ नहीं करने दूंगा। यदि मैं अपने देश के लिए आजादी चाहता हूं, तो मुझे यह मानना चाहिए कि प्रत्येक दूसरी सबल या निर्बल जाति को भी उस आजादी का वैसा ही अधिकार है। यदि मैं ऐसा नहीं मानता हूं और ऐसी इच्छा नहीं करता हूं, तो उसका यह अर्थ है कि में उस आजादी का पात्र नहीं हूं।

मेरी आकांक्षा का लक्ष्य स्वतंत्रता से ज्यादा ऊंचा है। भारत की मुक्ति द्वारा मैं पश्चिम के भीषण शोषण से दुनिया के कई निर्बल देशों का उद्धार करना चाहता हूं। भारत के अपनी सच्ची स्थिति को प्राप्त करने का अनिवार्य परिणाम यह होगा कि हरएक देश वैसा ही कर सकेगा और करेगा।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि भारत अपनी स्वतंत्रता अहिंसक उपायों से प्राप्त करे, तो फिर वह बड़ी स्थलसेना, उतनी ही बड़ी जलसेना और उससे भी बड़ी वायुसेना रखने की इच्छा नहीं करेगा। यदि आजादी की अपनी लड़ाई में अहिंसक विजय प्राप्त करने के लिए उसकी आत्मचेतना को जितनी ऊंचाई तक उठना चाहिए, उतनी ऊंचाई तक वह उठ सकी, तो दुनिया के माने हुए मूल्यों में परिवर्तन हो जायेगा और लड़ाइयों के साज-सामान का अधिकांश निरर्थक सिद्ध हो जायेगा। ऐसा भारत भले महज एक सपना हो, बच्चों की जैसी कल्पना हो लेकिन मेरी राय में अहिंसा द्वारा भारत के स्वतंत्र होने का फलितार्थ तो बेशक यही होना चाहिए।...तब उसकी आवाज दुनिया के सारे हिंसक दलों को नियंत्रण में रखने की कोशिश करने वाले एक शक्तिशाली देश की आवाज होगी।

क्या जगत को रास्ता दिखाने का श्रेय भारत को मिलेगा? : मैं अपने हृदय की गहराई में यह महसूस करता हूं कि दुनिया रक्तपात से बिलकुल ऊब गयी है। दुनिया इस असह्य स्थिति से बाहर निकलने का रास्ता खोज रही है। और मैं विश्वास करता हूं तथा उस विश्वास में सुख और गर्व अनुभव करता हूं कि शायद मुक्ति के प्यासे जगत् को यह रास्ता दिखाने का श्रेय भारत की प्राचीन भूमि को ही मिलेगा।

हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय सरकार क्या नीति अख्तियार करेगी सो मैं नहीं कह सकता। संभव है कि अपनी प्रबल इच्छा के रहते हुए भी मैं तब तक जीवित न रहूं। लेकिन अगर उस वक्त तक मैं जिन्दा रहा, तो अपनी अहिंसक नीति को यथासंभव संपूर्णता के साथ अमल में लाने की सलाह दूंगा। विश्व की शांति और नयी विश्व-व्यवस्था की स्थापना में यही हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा हिस्सा भी होगा। मुझे आशा तो यह है कि चूंकि हिन्दुस्तान में लड़ाकू जातियां हैं और चूंकि स्वतंत्र हिन्दुस्तान की सरकार के निर्णय में उन सबका हिस्सा होगा, इसलिए हमारी राष्ट्रीय नीति का झुकाव मौजूदा सैन्यवाद से भिन्न किसी अन्य प्रकार के सैन्यवाद की तरफ होगा। मैं यह उम्मीद तो जरूर करूंगा कि एक राजनीतिक शस्त्र की हैसियत से अहिंसा की अव्यावहारिक उपयोगिता का हमारा पिछला सारा...प्रयोग बिलकुल विफल नहीं जायेगा। और सच्चे अहिंसावादियों का एक मजबूत दल हिन्दुस्तान में पैदा हो जायेगा।

जब भारत स्वावलंबी और स्वाश्रयी बन जायेगा और इस तरह न तो खुद किसी की संपत्ति का लोभ करेगा और न अपनी संपत्ति का शोषण होने देगा, तब वह पश्चिम या पूर्व के किसी भी देश के लिए—उसकी शक्ति कितनी भी प्रबल क्यों न हो—लालच का विषय नहीं रह जायेगा। और तब वह खर्चीले शास्त्रास्त्रों का बोझ उठाये बिना ही अपने को सुरक्षित अनुभव करेगा। उसकी यह भीतरी स्वाश्रयी अर्थ-व्यवस्था बाहरी आक्रमण के खिलाफ सुदृढ़तम ढाल होगी।

दुनिया के सुविचारशील लोग आज ऐसे पूर्ण स्वतंत्र राज्यों को नहीं चाहते जो एक-दूसरे से लड़ते हों, बल्कि एक-दूसरे के प्रति मित्रभाव रखने वाले अन्योन्याश्रित राज्यों के संघ को चाहते हैं। भले ही इस उद्देश्य की सिद्धि का दिन बहुत दूर हो। मैं अपने देश के लिए कोई भारी दावा नहीं करना चाहता। लेकिन यदि हम पूर्ण स्वतंत्रता के बजाय अन्योन्याश्रित राज्यों के विश्वसंघ की तैयारी जाहिर करें, तो इसमें हम न तो कोई बहुत भारी बात ही कहते हैं और न वह असंभव ही है।

देश-प्रेम और मानव-प्रेम में भेद नहीं है

मेरे लिए देश-प्रेम और मानव-प्रेम में कोई भेद नहीं है, दोनों ही हैं। मैं देश-प्रेमी हूं, क्योंकि मैं मानव-प्रेमी हूं। मेरा देश-प्रेम वर्जनशील नहीं है। मैं भारत के हित की सेवा के लिए इंग्लैंड या जर्मनी का नुकसान नहीं करूंगा। जीवन की मेरी योजना में साम्राज्यवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। देश-प्रेमी की जीवन-नीति किसी कुल या कबिले के अधिपति की जीवन-नीति से भिन्न नहीं है। और यदि कोई देश-प्रेमी उतना ही उग्र मानव-प्रेमी नहीं है, तो कहना चाहिए कि उसके देश-प्रेम में उतनी न्यूनता है। वैयक्तिक आचरण और राजनीतिक आचरण में कोई विरोध नहीं है, सदाचार का नियम दोनों को लागू होता है।

जिस तरह देश-प्रेम का धर्म हमें आज यह सिखाता है कि व्यक्ति को परिवार के लिए, परिवार को ग्राम के लिए, ग्राम को जनपद के लिए और जनपद को प्रदेश के लिए मरना सीखना चाहिए, इसी तरह किसी देश को स्वतंत्र इसलिए होना चाहिए कि वह आवश्यकता होने पर संसार के कल्याण के लिए अपना बलिदान दे सके। इसलिए राष्ट्रवाद की मेरी कल्पना यह है कि मेरा देश

इसलिए स्वाधीन हो कि प्रयोजन उपस्थित होने पर सारा ही देश मानव-जाति की प्राण-रक्षा के लिए स्वेच्छापूर्वक मृत्यु का आलिंगन करे। उसमें जाति-द्वेष के लिए कोई स्थान नहीं है। मेरी कामना है कि हमारा राष्ट्र-प्रेम ऐसा ही हो।

मैं भारत का उत्थान इसलिए चाहता हूं कि सारी दुनिया उससे लाभ उठा सके। मैं यह नहीं चाहता कि भारत का उत्थान दूसरे देशों के नाश की नींव पर हो।

मेरा देश-प्रेम कोई बहिष्कारशील वस्तु नहीं, बल्कि अतिशय व्यापक वस्तु है और मैं उस देश-प्रेम को वर्ज्य मानता हूं जो दूसरे राष्ट्र को तकलीफ देकर या उनका शोषण करके अपने देश को उठाना चाहता है। देश-प्रेम की मेरी कल्पना यह है कि वह हमेशा, बिना किसी अपवाद के हरएक स्थिति में, मानव-जाति के विशालतम हित के साथ सुसंगत होना चाहिए। यदि ऐसा न हो तो देश-प्रेम की कोई कीमत नहीं। इतना ही नहीं, मेरे धर्म और उस धर्म से ही प्रसूत मेरे देश-प्रेम के दायरे में प्राणीमात्र का समावेश होता है। मैं न केवल मनुष्य नाम से पहचाने जाने वाले प्राणियों के साथ भ्रातृत्व और एकात्मता सिद्ध करना चाहता हूं, बल्कि समस्त प्राणियों के साथ—रेंगने वाले सांप आदि जैसे प्राणियों के साथ भी—उसी एकात्मता का अनुभव करना चाहता हूं। कारण, हम सब उसी एक स्रष्टा की संतति होने का दावा करते हैं और इसलिए सब प्राणी, उनका रूप कुछ भी हो, मूल में एक ही हैं।

प्रेम और सत्य का पैगाम : सार्वजनिक जीवन के लगभग 50 वर्ष के अनुभव के बाद आज मैं यह कह सकता हूं कि अपने देश की सेवा दुनिया की सेवा से असंगत नहीं है—इस सिद्धांत में मेरा विश्वास बढ़ा ही है। यह एक उत्तम सिद्धांत है। इस सिद्धांत को स्वीकार करके ही दुनिया की मौजूदा कठिनाइयां आसान की जा सकती हैं और विभिन्न राष्ट्रों में जो पारस्परिक द्वेषभाव नजर आता है। उसे रोका जा सकता है।

अगर हिन्दुस्तान अपने फर्ज को भूलता है तो एशिया मर जायेगा। यह ठीक ही कहा गया है कि हिन्दुस्तान कई मिली-जुली सभ्यताओं या तहजीबों का घर है, जहां वे सब साथ-साथ पनपी हैं। हम सब ऐसे काम करें कि हिन्दुस्तान एशिया की या दुनिया के किसी भी हिस्से की कुचली और चूसी हुई जातियों की आशा बना रहे।

अगर आप पश्चिम को कोई पैगाम देना चाहते हैं, तो वह प्रेम और सत्य का पैगाम होना चाहिए।...जमहूरियत के इस जमाने में गरीब की जागृति के इस युग में, आप ज्यादा-से-ज्यादा जोर देकर इस पैगाम की जागृति का दुनिया में प्रचार कर सकते हैं। चूंकि आपका शोषण किया गया है, इसलिए उसका उसी तरह बदला चुकाकर नहीं, बल्कि सच्ची समझदारी के जरिये आप पश्चिम पर पूरी तरह से विजय पा सकते हैं। अगर हम सिर्फ अपने दिमागों से नहीं, बल्कि दिलों से भी इस पैगाम के मर्म को, जिसे एशिया के विद्वान् हमारे लिए छोड़ गये हैं, एक साथ समझने की कोशिश करें और अगर हम सचमुच उस महान् पैगाम के लायक बन जायं, तो मुझे विश्वास है कि हम पश्चिम को पूरी तरह से जीत लेंगे। हमारी इस जीत को पश्चिम खुद भी प्यार करेगा।

पश्चिम आज सच्चे ज्ञान के लिए तरस रहा है। अणु-बमों की दिन-दूरी बढ़ती से वह नाउम्मीद हो रहा है। क्योंकि अणु-बमों के बढ़ने से सिर्फ पश्चिम का ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया का नाश हो जायेगा, मानो बाइबिल की भविष्य-वाणी सच होने जा रही है और पूरी कयामत होने वाली है। अब यह आपके ऊपर है कि आप दुनिया की नीचता और पापों की तरफ उसका ध्यान खींचें और उसे बचायें। ❑

कम्बल वितरण कार्यक्रम सम्पन्न

सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी परिसर में दिनांक 02 जनवरी 2019 को सड़क एवं घाट किनारे खुले आसमान के नीचे ठंड की असहनीय प्रकोप झेल रहे एक सौ जरूरतमंदों में भेंटस्वरूप कम्बल वितरित किया गया। ये कम्बल सदानंद ट्रस्ट, अहमदाबाद (गुजरात) के आर्थिक मदद द्वारा दिये गये।

कम्बल वितरण से पहले प्रकाशन के कार्यकर्ताओं ने काशी रेलवे स्टेशन, खिड़किया घाट तथा आसपास के इलाके में बेहद कठिन स्थिति में रह रहीं महिलाओं एवं दिहाड़ी मजदूरों को चिह्नित किया। ये महिलाएं चुनार-मिर्जापुर एवं बिहार के विभिन्न जिलों से महुआ के पत्तों को बीनकर बनारस लाती हैं और दोना-पत्तल बनाकर, उसे बेचकर गुजारा करती हैं। इस क्रम में उन्हें खुले आसमान के नीचे रात बितानी पड़ती है। 6-7 डिग्री सेल्सियस तापमान, मारक गलन, सनसनाती हवा और खुला आसमान। आप सोच सकते हैं—जीवन के इस जद्दोजहद को। इसी प्रकार जो मजदूर चिह्नित किये गये, उनका ठिकाना खिड़किया घाट है। कुछ ईंटें जोड़कर खाना बनाकर, उससे खाकर शहर में दिहाड़ी के निकलते हैं। रात में फिर वैसे ही खाना बनाकर आसमान के आश्रय या किसी दीवार को आड़ कर सो जाते हैं। एक बोरे में उनकी गृहस्थी सिमटी रहती है।

चिह्नित महिलाओं को परिसर सभागार में ससम्मान बुलाकर और खिड़किया घाट के मजदूरों को रात में सोये से जगाकर कम्बल दिया गया।

परिसर में संयोजक अरविन्द अंजुम ने उपस्थित जरूरतमंदों का स्वागत करते हुए बताया कि सर्व सेवा संघ गांधी-विचार की राष्ट्रीय संस्था है, संस्था द्वारा आप सबों के लिए आज जो भी संभव हो पा रहा है उसमें गांधीजी का आशीर्वाद ही है। इसे कृपा नहीं करुणा समझें, इंसानियत समझें, संवेदनशीलता समझें और आप सबों को भी कहीं ऐसा महसूस हो कि आप से अधिक किसी अन्य को जरूरत हो, तो आप भी अपने स्तर से उनका सहयोग व मदद करें।

हम सर्व सेवा संघ तथा आप सभी की ओर से श्रीकुमार पोद्दार, श्रीमती मयूरिका पोद्दार एवं श्री कौशिक भाई शाह के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

कार्यक्रम में परिसर प्रबंधक शीलम झा, प्रकाशन के कार्यकर्ता सुरेन्द्र नारायण सिंह, अनूप आचार्य, तारकेश्वर सिंह, सुशील सिंह, अतुल, अजय मिश्रा महेन्द्र कुमार आदि उपस्थित थे। **–स.ज. प्रतिनिधि**

एक अद्‌भुत जीवन-कलाधर

❑ काका कालेलकर

पहले मैंने गांधीजी का कुछ साहित्य ही पढ़ा था। उससे मन पर जो छाप पड़ी थी, वह रूबरू मुलाकात में दृढ़ बन गयी कि यह आदमी जीवन के सब अंग-उपांगों पर, पहलुओं पर, गहराई से सोचने वाला एक जीवन-विज्ञानशास्त्री, साइंटिस्ट है। संभाषण में और चर्चा पर से मालूम हुआ कि इस आदमी का तर्कशास्त्र भी बहुत ही तेज है। अनुमान निकालने में कहीं गलती न हो जाये, इसके बारे में उनकी जागृति उनकी सत्यनिष्ठा में से ही पैदा हुई है। झूठे इरादे को पकड़ लेने की उनकी कला भी उत्तम है। लेकिन उपहास करके दूसरे को अपमानित करने की तार्किकों की वृत्ति का उनमें संपूर्ण अभाव है।

आठ दिन तक मैंने उनके साथ हुज्जत की। जी हां, हुज्जत शब्द ही ठीक है और फिर यकीन हो गया—यकीन सिर्फ हुज्जत के कारण नहीं हुआ, बल्कि उनकी बातचीत, बर्ताव, उठना-बैठना, खानपान सबका निरीक्षण करने के बाद यकीन हो गया कि यह आदमी युगपुरुष है। और इसीलिए व्यापक अर्थ में जीवन-कलाधर है। मैं जानता था कि गांधीजी राजनीतिक पुरुष हैं, तत्त्वज्ञानी हैं, धर्म-जिज्ञासु हैं, लोकनेता हैं और सनकी भी हैं। लेकिन उस पहली मुलाकात में सबसे अधिक यकीन अगर किसी बात का हुआ हो तो वह यह कि गांधीजी इस युग के सबसे लोकोत्तर जीवन-कलाधर हैं। कलाधर के जीवन में संगीत होना चाहिए, सामंजस्य होना चाहिए, प्रमाणबद्धता होनी चाहिए, व्याकरण तो होना ही चाहिए। हर एक के साथ बातचीत करते, अपना काम करते, मुंह धोते, सब्जी काटते, कपड़ों की तह करते—हर एक बात में उनका तरीका, उनकी सफाई की आदत और जरूरत से अधिक समय न देने की उनकी प्रमाणबत्ता, यह सब देखकर मेरी अभिरुचि आकंठ तृप्त हुई।

गांधीजी से मैं कविवर रविन्द्रनाथ के शांतिनिकेतन में मिला था। नंदलाल बोस और असितकुमार हलदार जैसे कलाकारों के सहवास में मेरे दिन गुजर रहे थे। बंगला संगीत मैं जी भरकर सुनता था। कलानंद के सेवन की मेरी भूख अतृप्त नहीं थी। फिर भी गांधीजी को देखते ही उनके बारे में असाधारण कलात्मक आकर्षण अनुभव करने लगा। उनकी नाक, उनके कान या उनका उस समय का चेहरा वैसे कुछ खास सुंदर नहीं था। गणेशजी के जैसे उनके कान और उसके छेद, बंगाली शब्दों में कहें तो, सबकुछ 'विश्री' था। लेकिन व्यक्तित्व? उनके व्यक्तित्व की मोहिनी सर्वोच्च कलाभिरुचि को संतोष प्रदान करने वाली थी। केवल संतोष प्रदान करके रुकने वाली नहीं, बल्कि लेने वाले की क्षमता के अनुसार उतने प्रमाण में दीक्षा देने वाली भी।

और इसीलिए अपने इर्द-गिर्द इकट्ठा होने वाले लोगों का जीवन बनाने की कला उनको अच्छी तरह विदित थी। किन-किन व्यक्तियों ने अधिक से अधिक कितने आदमियों के जीवन बनाये और कैसे उत्तम बनाये, इसकी सूची अगर किसी इतिहासकार ने बनायी, तो मैं मानता हूं कि गांधीजी का नाम उसमें असंख्य स्थानों में आयेगा।

सच्चा जीवन-कलाकार हर एक वस्तु के अंतर की आत्मा को पकड़ लेता है। गांधीजी जैसा चतुर बनिया और निपुण बैरिस्टर तो लोगों के गुणदोष आसानी से पकड़ पायेगा। उसमें कोई विशेष बात नहीं। लेकिन हर एक आदमी कहां तक चढ़ सकेगा, इसका अंदाज उस आदमी की अपेक्षा गांधीजी को अधिक रहता था। इसीलिए और गांधीजी मिट्टी के ढेलों में से शूरवीर, उत्तम देशभक्त और साधना-वीर तैयार कर सके। अगर एक ही वाक्य में गांधीजी का वर्णन करने के लिए मुझसे कहा जाये तो मैं कहूंगा कि यह महात्मा मानवता का शिल्पकार था, यही है मेरे हृदय पर अंकित उनकी प्रधान पदमुद्रा! ❑

गीता-मर्मज्ञ आचार्य शिवानंद पंचतत्त्व में विलीन

देवनागरी इंटर कालेज, मेरठ के पूर्व प्रधानाचार्य, स्वतंत्रता सेनानी, आध्यात्मिक गुरु एवं शिक्षाविद् आचार्य शिवानंद का 28 दिसंबर 2018 को प्रातः 6 बजे मेरठ में निधन हो गया। आप 92 वर्ष के थे।

आपने गांधीजी से प्रभावित होकर स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया। इन्होंने अपने गहन ज्ञान के लिए अनेक देशों में प्रख्यात रहे हैं और अनेक आध्यात्मिक ग्रंथों की उत्कृष्ट टीकाएं लिखी हैं। अमेरिका सहित कई देशों में गीता पर प्रवचन दिये। अनेकों बार आकाशवाणी (दिल्ली) से अध्यात्म एवं गांधीजी पर उत्कृष्ट व्याख्यान प्रसारित हुआ है। अध्यात्म के साथ सामाजिक जागरूकता के लिए अंतिम क्षण तक प्रयत्नशील रहे। वे आध्यात्मिक अनुभूतियों से समृद्ध एवं ध्यान-योगी रहे हैं।

आचार्य जी हिन्दी, अंग्रेजी एवं संस्कृतविद् थे। आपकी समस्त रचनाएं सरल, सरस एवं स्पष्ट शैली में जीवन की गुत्थियों का विश्लेषण एवं आम आदमी का उत्तम मार्गदर्शन करती रही हैं। आप स्थानीय संस्कृत महाविद्यालय, मेरठ कॉलेज, रघुनाथ गर्ल्स कॉलेज, इस्माइल गर्ल्स डिग्री कॉलेज, नगरपालिका आदि कई संस्थाओं के सदस्य रहे। गीता और उपनिषद् इनके प्रिय ग्रंथ रहे। आपको राष्ट्रपति पुरस्कार सहित गीता मर्मज्ञ, मेरठ रत्न, संत शिरोमणि, हंस पुरस्कार, साहित्य भूषण (उ. प्र.) आदि पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी से आचार्य शिवानंद की 18 पुस्तकें प्रकाशित हैं, जो काफी लोकप्रिय हैं। वे प्रकाशन का सहयोग भी करते रहे हैं। आचार्यजी के जाने से सर्व सेवा संघ प्रकाशन अपना एक शुभचिन्तक खो दिया है।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन कार्यालय में शोक-सभा का आयोजन कर सभी कार्यकर्ताओं ने सर्वधर्म प्रार्थना का पाठ किया और दो मिनट का मौन रखकर अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

–स. ज. प्रतिनिधि

प्रश्नोपनिषद

गांधी ने एक ही चीज में सब साध लिया – हे राम!

❑ विनोबा

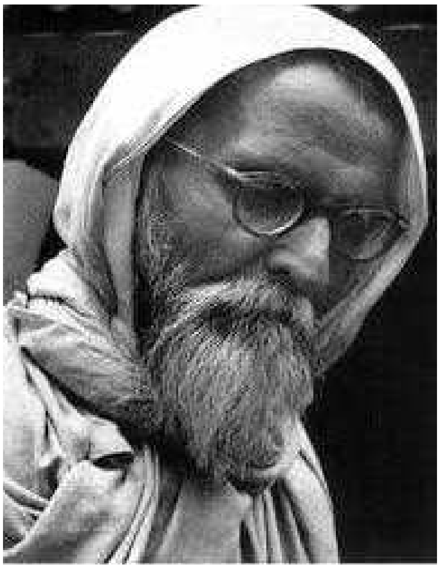

चंबल के बेहड़ों के बागियों के एक बड़े गिरोह के सरदार श्री तहसीलदार सिंह। उन्होंने आगरा जेल से विनोबाजी को पत्र लिखकर प्रार्थना की थी कि आप उस क्षेत्र में जाकर हमारे बागी भाइयों से यह गलत पेशा छोड़ने तथा आत्मसमर्पण कर देने के लिए समझाइये। फिर बाबा वहां गये और आत्मसमर्पण हुआ। वही तहसीलदार जी 1972 जुलाई में आये थे, उस समय हुआ प्रश्नोत्तर यहां दे रहे हैं। –सं.

प्रश्न : मैं जब-जब ध्यान या भजन करने बैठता हूं, तब मन अधिक चंचल हो उठता है।

उत्तर : यह प्रश्न अर्जुन ने भी पूछा है, भगवान को। मन चंचल है। जब तक हम चित्त को शुद्ध नहीं करते, तब तक भगवान का ध्यान सधेगा नहीं। बहुत-से लोग चित्त के मल साफ किये बिना ध्यान में एकाग्र होने की कोशिश करते हैं, तो चित्त दौड़ता है। जैसे हम भगवान की पूजा के लिए स्नान करके बैठते हैं, बिना स्नान किये नहीं बैठते। वैसे ही ध्यान करने के पहले चित्त का स्नान होना चाहिए। चित्त के जो मल हैं, वे साफ कर लेने चाहिए, तब ध्यान सधेगा।

यह जो है कि चित्त साफ किये बिना ध्यान सधता नहीं, वह हमारे लिए अच्छी बात है, लाभदायी है। क्योंकि तब हम चित्त शुद्ध करने के लिए प्रयत्नशील रहेंगे। और धीरे-धीरे चित्त शुद्ध होगा। बिना चित्त शुद्ध किये ध्यान सधा—और सध भी सकता है किसी को, तो उसके परिणाम भयानक आयेंगे। उससे नुकसान पहुंचेगा—उसे भी और दुनिया को भी।

जैसे रावण को ध्यान सधा था, लेकिन उससे क्या परिणाम आये? इसलिए पहले मन-बुद्धि पर जो मल हैं, वह साफ करें, तब ध्यान सधेगा और वह लाभदायी भी होगा।

प्रश्न : मेरे पापों का अंत कैसे होगा?

उत्तर : पापों का अंत करने के लिए, एक तो नये पाप न करने का निश्चय करना चाहिए। दूसरा, पुराने पापों का इजहार करना चाहिए, जाहिरा तौर पर। लोगों में कह देना चाहिए। तीसरा, पश्चात्ताप यानी प्रायश्चित करना चाहिए। उसके लिए अपने को दंडित करना चाहिए। दंडित करना यानी उपवास करना, संपत्ति छोड़ना आदि। और चौथा, नामस्मरण। इससे पाप खतम हो जायेंगे।

प्रश्न : हमारे लिए संदेश?

उत्तर : शास्त्र में सात लोगों की बात आती है। *भुर् भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्।* ये जो सात लोग हैं, वे चिन्तन के स्तर हैं। भूलोक में चिन्तन होगा। फिर प्राणायाम आदि होगा तो भुवः लोक में चिन्तन होगा। फिर ध्यान होगा तो स्वर्गलोक में चिन्तन होगा। फिर चिन्तनशक्ति से मन के ऊपर जाना है। इस तरह ऊपर-ऊपर चिन्तन की भूमिका है। मनुष्य नीचे की भूमिका छोड़ता नहीं, तो ऊपर का दर्शन नहीं होता। इसलिए एक उम्र के बाद ऊपर के दर्शन के लिए नीचे का स्तर छोड़ना चाहिए। अब तक जिस स्तर पर रहे, उसी स्तर पर चिन्तन करने की आदत हो गयी। उसी स्तर पर रहेंगे तो बुद्धि-विकास नहीं होगा। ऊपर के स्तर पर चढ़ने से बुद्धि-विकास होता है।

गांधीजी अवतारी पुरुष थे। उनकी बात कौन जान सकता है? उन्होंने एक ही चीज में सब साध लिया—'हे राम!' उन्होंने अंत में 'हे राम!' कहा। तुलसीदासजी ने कहा है—*जनम जनम मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।*

कारुण्यासक्ति छोड़ना बहुत कठिन होता है। मैं जरा कठोर हो गया हूं। कारुण्यासक्ति को काट रहा हूं। 'साम्य-सूत्र वृत्ति' में इस पर एक सूत्र है, *सत्त्वं जयेत् सावधानः।* सत्त्वगुण को जीतना, तमोगुण को तोड़ सकते हैं, लेकिन सत्त्वगुण को तोड़ना कठिन है। इसलिए सावधान। कैसे जीतेंगे उसको? एक सातत्येन। सत्त्वगुण सतत रहना चाहिए। रजोगुण, तमोगुण के लिए अवकाश नहीं मिलना चाहिए। सातत्य से सत्त्वगुण-जय संभव है। दो, निरहंकारेण—अहंकार छोड़ना चाहिए। 'मैं सत्त्वगुणी हूं' यह अहंकार न हो। 'वह मूर्ख है, मैं अक्लमंद हूं', ऐसा भेद आ सकता है, इसलिए निरहंकारिता आवश्यक है। तीन, कारुण्यासक्ति-वर्जनेन। कारुण्यासक्ति छोड़नी है। चार, *कीर्ति-परिहारेण।* कीर्ति होगी तो उसे तोड़ना होगा। कीर्ति को कैसे तोड़ना, कठिन सवाल है। चारों ओर हमारी कीर्ति फैली है, तो उसे कैसे तोड़ें? उसका परिहार होना चाहिए। आखिर लिखा, *अंतिमफल-त्यागेन।* अंतिम फल यानी मुक्ति, उसका भी त्याग। इतना करते हैं तब सत्त्व पर

विजय प्राप्त होता है।

प्रश्न : भूमिहीनों को संगठित कर उनका अभिक्रम जगाकर उन्हीं के द्वारा भूमिवानों से इकट्ठा भूमि मांगी जाये, इस पर आपकी क्या राय है?

उत्तर : यह बहुत महत्त्व का प्रश्न है। भूमिहीनों को तथा संबंधित लोगों को संगठित कर जमीन मांगना यानी भूमिहीनों का अभिक्रम जगाना। अभिक्रम जगाना चाहिए लेकिन वह मांगने का नहीं, देने का अभिक्रम जगाना चाहिए। इसलिए सारे संगठित हो जायेंगे और देंगे तो उनका असर अवश्य पड़ेगा। कहा जाता है कि दुनिया में कुछ है 'हॅव्ज' (अस्तिमं) और कुछ है 'हॅव-नॉट्स' (नास्तिमंत)। मैं कहता हूं, 'हॅव-नॉट' कोई है ही नहीं। हरेक के पास कुछ-न-कुछ है। किसी के पास जमीन है, किसी के पास पैसा है, किसी के पास श्रम है। जिसके पास जो है, वह दें। जिसके पास श्रम है, वह अपना श्रम दें। भूदान जब शुरू हुआ तो बिलकुल छोटे से छोटे किसानों से भी मैंने दान लिया। जिसके पास एक एकड़ जमीन थी, उससे भी लिया। मुख्य वस्तु यह है कि किसी भी कारण से गांव के दो टुकड़े नहीं होने चाहिए। देखिये, भूमि-समस्या एक आलंबन है। करने का काम है, ग्राम-परिवार बनाना और उसके द्वारा सरकार-मुक्ति। गौतम बुद्ध के जमाने में यज्ञ में बकरे की बलि देते थे। तो बुद्ध ने अहिंसा के प्रचार के लिए इस समस्या को वाहन के रूप में लिया। उसी तरह भूमि-समस्या एक वाहन है। भूमि-समस्या का परिहार कभी भी होने वाला नहीं है। आज आप जमीन बांटेंगे, फिर भी दस साल के बाद वह कम पड़ेगी; क्योंकि आगे आबादी बढ़ेगी। मुख्य बात यह है कि 'आखिर का मनुष्य खायेगा तब हम खायेंगे' यह भावना गांव में विकसित होनी चाहिए। हमारे दादा खाने के पहले पूछ लेते थे कि नौकरों ने खाना खा लिया है या नहीं, तब खुद खाने बैठते थे। तो मुख्य बात है, ग्राम-परिवार बनाने की। ❑

कैसे हो हिन्दू-समाज में क्रांति?

❑ **कि. घ. मशरूवाला**

जिस बात पर हमें विचार करना है वह यह है कि हम हिन्दू धर्म का सिर्फ सुधार करना चाहते हैं, या मानव-धर्म का नया संस्करण करके हिन्दू समाज में क्रांति करना चाहते हैं।

बरसों से मैं यह कहता आया हूं, और मेरी यह मान्यता ज्यादा और ज्यादा मजबूत होती जाती है कि आज का एक भी धर्म—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, जैन वगैरह—मानव-समाज की मौजूदा समस्याओं को हल करने लायक नहीं रहा। सभी धर्म बेजान बन गये हैं, और किसी धर्म का उसके मूल रूप में जीर्णोद्धार करने पर भी वह आज की समस्याओं को हल नहीं कर सकता। इस मामलें में हिन्दू धर्म सबसे ज्यादा बेजान और भ्रमों को दूर करने में असमर्थ है।

मेरा विश्वास है कि मनुष्य के जीवन या समाज की रचना में और व्यवहार की रूढ़ियों में जड़मूल से क्रांति करनी हो, तो सबसे पहले उसकी धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन करने की जरूरत है। अगर आप किसी व्यक्ति को ऐसी सामाजिक रूढ़ियां तोड़ने के लिए कहें, जो लगभग धार्मिक रूढ़ियों जैसी लगती हों, तो वह अपने पुराने धर्म से चिपके रहकर ऐसा नहीं कर सकेगा। पर मुसलमान या ईसाई बन जाने पर, या किसी नये गुरु अथवा संप्रदाय का शिष्य हो जाने पर वह दूसरे ही क्षण पुराने विचारों और बंधनों को तोड़ डालने में समर्थ हो जाता है। पुराने सनातन धर्म पर जिस हद तक हमारी अश्रद्धा हुई है, उसी हद तक हम भी अस्पृश्यता-निवारण, सहभोजन, अंतर्जातीय, अंतर्प्रान्तीय या अंतर्धार्मिक विवाह वगैरह के लिए तैयार हो सके हैं। और जिस हद तक हमारी मान्यताएं उन पुरानी रूढ़ियों की लीक में ही पड़ी रहती हैं, उस हद तक हम सांप्रदायिक एकता पैदा करने वगैरह के बारे में तथा दूसरे बहुत से सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन करने के बारे में मजबूत कदम नहीं उठा सकते। सिर्फ सर्वधर्म-समभाव या सर्ववर्ण-समभाव की भावना रखकर यह कहना कि मैं हिन्दू होते हुए मुसलमान भी हूं, ईसाई भी हैं, ब्राह्मण होते हुए भी भंगी हूं, राजनीतिज्ञ होते हुए भी बुनकर या किसान हूं—सिर्फ ऊपरी कोशिश मात्र है। यही आदमी अगर सचमुच मुसलमान या ईसाई बन जाय, या भंगिन से शादी करके भंगी का धंधा करने लगे, तब उसे 'जूता कहां काटता है' इस बात का जो अनुभव होगा वह हमें नहीं हो सकता। हमारी सारी कोशिश अपने हिन्दुत्व, ब्राह्मणत्व वगैरह को सुरक्षित रखकर दूसरों के साथ मेल बैठाने की होती है। वे हिन्दू नहीं हैं और ब्राह्मण नहीं हैं, यह भावना हमारे दिमाग से दूर नहीं हो सकती।

एक दिन नागपुर जेल में मेरे एक साथी श्री बाबाजी मोघे पिछड़ी हुई जातियों की सेवा और उनके उद्धार के बारे में मुझसे चर्चा कर रहे थे। चर्चा के दौरान उनके मुंह से मराठी में नीचे लिखे आशय का वाक्य निकल पड़ा—''कई बार ऐसा लगता है कि इन लोगों के वहमों और अंधश्रद्धाओं को दूर करने के लिए इन्हें मुसलमान हो जाने की सलाह देनी चाहिए!'' श्री बाबाजी के मुंह से यह विचार निकलना बहुत सोचने जैसी बात है। इसका मतलब यह हुआ कि उनको यह विश्वास हो गया है कि हिन्दू के बजाय इस्लाम में वहमों और अंधश्रद्धाओं को हटाने की शक्ति ज्यादा है। और यह बात बहुत हद तक सच भी है। लेकिन यह भी समस्या का सच्चा हल नहीं है; क्योंकि इस्लाम भी भ्रमों, वहमों, अंधश्रद्धाओं और संकुचितता से परे नहीं है और न मानव-जाति की आज की समस्याओं को हल करने में समर्थ है। साथ ही पूरे कुरान

को जैसे का तैसा स्वीकार नहीं किया जा सकता। अगर हम खुद इस्लाम स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हों, तो किसी दूसरे को यह सलाह कैसे दे सकते हैं? और इस्लाम में सरलता और सीधी दृष्टि के होते हुए भी बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जिन्हें हमारी विवेक-बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती। यही हाल ईसाई, पारसी वगैरह धर्मों का है।

हम हिन्दू लोग जिन्दगीभर एक विचित्र प्रकार की बौद्धिक कसरत करने के आदी हो गये हैं। एक तरफ से हमारी फिलसूफी ठेठ अद्वैत वेदांत की है। इस लीक में बुद्धि को रखकर जब हम विचार करते हैं, तो दुनिया झूठी, देव झूठे, गुरु-शिष्य झूठे, विधि-निषेध झूठे, पाप-पुण्य झूठे, नीति-अनीति, हिंसा-अहिंसा, सत्य-झूठ सबको झूठे कहने की हद तक पहुंच जाते हैं। और इससे निकलकर जब दूसरी लीक पर चलते हैं, तो गोत्र देवता, ग्राम देवता, गुरु देवता, पितृ-पूजा, गृह-पूजा, अवतार-भक्ति, अलग-अलग त्यौहारों की अलग-अलग देवपूजा, श्रुति-स्मृति-पुराण-आगम-निगम-मंत्र-तंत्र-कुरान-बाइबल वगैरह सबका समर्थन हम करने लगते हैं। इसमें हमें दूसरे मतों के प्रति सहिष्णुता या रवादारी रखने भर से संतोष नहीं होतां हम सर्वमत-समभाव—और काकासाहब कालेलकर की भाषा में तो सर्वमत-ममभाव—तक पहुंचते हैं। अनेक देवताओं वाले समाज का अनेक जातियों और छोटे-छोटे भौगोलिक विभागों में बंटे रहना सर्वथा स्वाभाविक है। काफी विचार करने के बाद मैंने महसूस किया है कि हमारे समभाव या ममभाव का मतलब 'श्रद्धालु नास्तिकृता' के सिवा और कुछ नहीं हैं। किसी चीज के अस्तित्व में भले हमारी श्रद्धा न हो, हम उसे चाहे मनुष्य की कोरी कल्पना या गैर-कुदरती चीज मानते हों, फिर भी उसके छोड़ने में डर या उसकी परंपरा को जारी रखने या कला की कदर करने के लिए उसे पकड़ रखने का मोह ही हमारी उपासना का स्वरूप हो गया है। इसमें न तो सत्य की उपासना है, न निष्ठा की सरलता और अनन्यता है।

अगर हमें हिन्दू समाज और हिन्दू जनता को ऊपर उठाना है, तो नीचे दिये हुए सिद्धांतों को स्वीकार करने का साहस हमें करना ही चाहिए :

1. एक सब जगह फैले हुए (सर्वव्यापक), सब पर काबू रखने वाले (सर्वनियंता) परमात्मा के सिवा दूसरे किसी देव, ग्रह, पितृ, अवतार गुरु वगैरह की या उसकी मूर्ति की या प्रतीक की उपासना, पूजा, मंदिर-स्थापना वगैरह न की जाय। और इस बात का आग्रह रखा जाय कि किसी नाम रूपात्मक सच्चे या काल्पनिक सत्त्व को ईश्वर की बराबरी में या उसके साथ नहीं बैठाया जा सकता।

2. कोई भी शास्त्र—वेद, गीता, कुरान या बाइबल भी—ईश्वर के बनाये हुए या ईश्वर की वाणी नहीं है। किसी ग्रंथ को इस तरह प्रमाणरूप न माना जाय कि उसके वचनों को अपनी विवेक-बुद्धि पर कसा ही न जा सके।

3. किसी मनुष्य को ईश्वर या पैगंबर (परमेश्वर का खास भेजा हुआ संदेशवाहक) की कोटि में न रखा जाय। किसी को अस्खलनशील, यानी जिसके विचार या वरताव में भूल हो ही नहीं सकती ऐसा न माना जाय। और इससे उसका हरएक काम शुद्ध, दिव्य और श्रवण तथा कीर्तन के लायक ही है ऐसा न समझा जाय। सामान्य जनता के हित को दृष्टि में रखकर सदाचार के जो कम से कम नियम ठीक समझे जाते हों, उन्हें तोड़ने का अधिकार किसी का न माना जाय; और किसी व्यक्ति की विशेष पवित्रता के कारण तो उसका यह अधिकार हरगिज न माना जाय। बुरी वृत्ति के लोग तो सदाचार के नियमों का भंग करेंगे ही। इसके लिए समाज अपने ढंग से इसे रोकेगा और ऐसे लोगों को सजा भी देगा। शुद्ध वृत्ति के लोग इन नियमों का ज्यादा सावधानी से पालन करेंगे और उनकी सीमा को लांघने की इच्छा तक न करेंगे। इसलिए अगर महात्मा पुरुषों ने समाज के हित के खिलाफ आचरण किये हों, तो उन्हें ढांकने की कोशिश न की जाय; बल्कि यह साफ कहा जाय कि वे उनकी कमजोरियां ही थीं। इसलिए ऐसे चरित्रों की प्रशंसा में पद, भजन, वगैरह न बनाये जाय। उनका कीर्तन न किया जाय और न साहित्य में ऐसी उपमाओं, रूपक वगैरह अलंकारों का उपयोग किया जाय। जैसे कि कृष्ण की श्रृंगार-लीला आदि।

4. अंत में, वही समाज और वही परिवार पीढ़ी-दर-पीढ़ी तरक्की करता है और सुख पाता है, जो आलस्य से मुक्त होता है, कंचन-कामिनी के बारे में नियताचार से (परहेज के साथ) काम करता है और आहार तथा स्वच्छता के नियमों का पालन करता है। राजनीति के साम-दाम आदि उपाय, धर्म के व्रत-तप और उपासना, समाज के विवाह और विरासत के नियम, आर्थिक रचना और लेन-देन के कायदे—सबका आखिरी मकसद यही होना चाहिए कि वे प्रजा को निरलस (आलस न करने वाली, मेहनती), नियताचारी (परहेज से रहने वाली), तंदुरुस्त और पवित्र जीवन बिताने वाली बनाने के लिए सहूलियतें पैदा करें। यही धर्म की बुनियाद है। इन गुणों के पोषक नियमों, संस्थाओं और परिस्थितियों का निर्माण करना और उनसे संबंध रखने वाले सत्यों को खोजना ही हमारी सारी प्रवृत्तियों का उद्देश्य होना चाहिए। इस तरह के नियमों का पालन करने से ही पिछड़ी हुई जातियां आगे आवेंगी और उनमें से भी जितने व्यक्ति जितनी पीढ़ियों तक उनका पालन करेंगे उतने ही वे ऊंचे उठेंगे। भूतकाल में इन नियमों का भंग करने में ही आगे बढ़ी हुई जातियों का पतन हुआ है। जिन पीढ़ियों में ये गुण बने रहेंगे उनकी दुर्दशा नहीं होगी।

5. बुद्ध ने कहा था : *बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।* मैं यों कहूंगा कि एक परमेश्वर का आश्रय (विश्वास) रखो, धर्म का आश्रय (पालन) करो, और दूसरे लोगों के सदाचार—धर्मयुक्त आचरण—का आश्रय (आधार-प्रमाण) लो। परमेश्वर के सिवा दूसरे किसी देव-देवता-दैवत का आसना न लिया जाय। किसी भी पैदा हुए या काल्पनिक गुरु, माता या पिता या दूसरे पूज्य व्यक्ति या→

30 जनवरी : गांधीजी निर्वाण-दिवस
विनम्र स्मरण व श्रद्धांजलि

हे राम!

❑ **मनु बहन गांधी**

बापू चार सीढ़ियाँ चढ़े और सामने देख नियमानुसार हम लोगों के कन्धे पर से अपने हाथ उठाकर उन्होंने जनता को प्रणाम किया और आगे बढ़ने लगे। मैं उनके दाहिनी ओर थी। मेरी ही तरफ से एक हृष्ट-पुष्ट युवक, जो खाकी वर्दी पहने और हाथ जोड़े हुए था, भीड़ को चीरता हुआ एकदम घुस आया। मैं समझी कि यह बापू के चरण छूना चाहता है; रोज ऐसा ही हुआ करता था। बापू चाहे जहाँ जाएँ, लोग उनका चरण छूने और प्रणाम करने के लिए पहुँच ही जाते थे। हम लोग भी अपने ढंग से उनसे कहा करते कि बापू को यह ढंग पसन्द नहीं। पैर छूकर चरण-रज लेनेवालों से बापू भी कहा ही करते कि ''मैं तो साधारण मानव हूँ। मेरी चरण-रज क्यों लेते हैं?'' इसी कारण मैंने इस आगे आनेवाले आदमी के हाथ को धक्का देते हुए कहा : ''भाई! बापू को दस मिनट देर हो गयी है, आप क्यों सता रहे हैं?'' लेकिन उसने मुझे इस तरह जोर से धक्का मारा कि मेरे हाथ से माला, पीकदानी और नोटबुक नीचे गिर गयी। जब तक और चीजें गिरीं, मैं उस आदमी से जूझती ही रही। लेकिन जब माला भी गिर गयी, तो उसे उठाने के लिए नीचे झुकी। इसी बीच दन-दन...एक के बाद एक तीन गोलियाँ दगीं। अँधेरा छा गया! वातावरण धूमिल हो उठा और गगनभेदी आवाज हुई। ''हे रा—म! हे राम...'' कहते हुए बापू मानो सामने पैदल ही छाती खोलकर चले जा रहे थे। वे हाथ जोड़े हुए थे और तत्काल वैसे ही नीचे जमीन पर आ गिरे। कितने ही लोगों ने उस समय बापू को पकड़ने का यत्न किया। आभा बहन भी नीचे गिर गयीं। एकदम उन्होंने बापू का सिर अपनी गोद में ले लिया। मैं तो समझ ही नहीं पायी कि आखिर यह क्या हो गया? यह सारी घटना घटते मुश्किल से 3-4 मिनट लगे होंगे। धुँआ इतना घना था। गोलियों की आवाज से मेरे कान बहरे-से हो गये। लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी।

हम दोनों लड़कियों का क्या हाल हुआ होगा, यह तो शब्दों में लिखा ही नहीं जा सकता। सफेद वस्त्रों पर से रक्त की धार छूट पड़ी। बापू की घड़ी में ठीक 5 बजकर 17 मिनट हुए थे। मानो बापू जुड़े हुए हाथों से हरी घास में पृथ्वी माता की गोद में अपार निद्रा में सो रहे हों और हमारे अनुचित साहस पर नाराज न होने पर माफ कर देने के लिए कह रहे हों।

उन्हें कमरे में ले जाने तक दस मिनट तो लग ही गये। दुर्भाग्य से वहाँ कोई डॉक्टर भी नहीं मिला। सुशीला बहन की प्राथमिक चिकित्सा (फर्स्ट एड) की पेटी में खोजने पर भी कोई खास दवा नहीं मिली। वे कहते ही थे कि ''मेरा सच्चा डॉक्टर तो रामजी है।'' हम अल्पात्मा लोग अपने स्वार्थ के लिए उन्हें जिलाने के निमित्त उनके अपने मात्र के लिए स्वीकृत इस सिद्धान्त को भ्रष्ट कर दें, शायद इसीलिए हमें उस समय कुछ सूझ नहीं पाया हो! सरदार दादा तो अभी अपने घर भी नहीं पहुँचे होंगे कि पीछे लौटे। हम लोग तो बुक्का फाड़-फाड़कर रो रहे थे, पर बापू को आज दया नहीं आ रही थी! किसी समय मुझ जैसी को उदास देखते, तो उसका कारण जानने के लिए पिल पड़ते और उसे जानकर ही छोड़ते थे। लेकिन आज तो बापू सब कुछ सहन किये जा रहे हैं!

सात बार की ऑटोमेटिक पिस्तौल की पहली गोली मध्य रेखा से साढ़े तीन इंच दाहिनी ओर नाभि से ढाई इंच ऊपर पेट में लगी। दूसरी मध्य रेखा से एक इंच दूर और तीसरी दाहिनी ओर छाती में मध्य रेखा से चार इंच दूर लगी थी। पहली और दूसरी गोली शरीर के आर-पार हो गयी थी और तीसरी फुफ्फुस में समा गयी थी। उसका ऊपर का कवच बाद में कपड़ों में मिला और आर-पार निकली हुई गोलियाँ तो प्रार्थना-स्थल पर ही मिलीं। अत्यधिक रक्त बहने के कारण चेहरा तो करीब दस मिनट में ही सफेद पड़ गया।

बापू नहीं रहे! : भाई साहब ने तो कलेजे पर पत्थर रखकर अस्पताल में फोन का ताँता ही लगा दिया। बाहर तो हजारों मानवों की भीड़ उमड़ पड़ी थी। भाई साहब बड़ी मुश्किल से सरदार के बंगले से होकर

→प्राणियों को परमेश्वर या परमेश्वर के द्वारा भेजे हुए या उससे खास प्रेरणा पाये हुए न समझा जाय; अधर्म का आचरण न किया जाय; और किसी भी व्यक्ति के (वह चाहे जितना बड़ा हो) ऐसे आचार, जिनके ठीक होने में संदेह हो, प्रमाण न माने जायं और न उनका बचाव किया जाय।

जिस बात पर हमें विचार करना है वह यह है कि हम हिन्दू धर्म का सिर्फ सुधार करना चाहते हैं, या मानव-धर्म का नया संस्करण करके हिन्दू समाज में क्रांति करना चाहते हैं। ❑

विलिंगटन अस्पताल में पहुँचे। लेकिन वहाँ से भी निराश होकर वापस लौट आये। इस बीच कन्हैयालाल मुंशी आ गये। सरदार दादा भी तुरत पहुँच गये। मणिबेन ने हम लोगों को ढाढ़स बँधाया। मुझे गीता-पाठ शुरू करने के लिए कहा। मणिबेन के आने से और उनके तथा सरदार दादा के आश्वासन की ममताभरी मदद मिलने से मैं अपने को थोड़ा-सा सँभाल पायी और गीता-पाठ शुरू कर दिया। मुंशीजी ने पाठ में पूरा साथ दिया। इसी बीच कर्नल भार्गव आ पहुँचे और उन्होंने बापू का परीक्षण शुरू कर दिया। दो मिनट तो सरदार दादा से लेकर हम सभी उत्सुकताभरी आश्वासन की एक लहर का अनुभव करने लगे। ऐसा लगा कि राहत की कुछ खबर सुनायी पड़े। किन्तु उन्हें तो देखते ही मालूम पड़ गया कि शरीर में अब कुछ जान नहीं। लेकिन कहावत है न कि डॉक्टर तो अन्त तक कुछ कहता ही नहीं। महापुरुष के प्रयाण का यह भयंकर समाचार देना इस डॉक्टर के लिए बापू को बेधने वाली भीषण गोली से भी कठोर था। इन्होंने मेरा तो ऑपरेशन बड़ी ही सावधानी से किया था। आज सुबह ही इनके और इनके नर्सिंग-होम के बारे में बातें हो चुकी थीं। समय बिताने के लिए इन्होंने दस-पन्द्रह मिनट लगा दिये और अन्त में कह ही दिया : ''मनु बेटी! अब बापू नहीं रहे!''...वज्रप्रहार-सा यह समाचार सुनने के साथ ही जिस कमरे में रात में हम बच्चे और बापू किलकारियाँ भरते थे, वहीं भयंकर विलाप छा गया। देवदास काका, गोपू, दोनों सबसे छोटे लड़के और नन्हा पौत्र—सभी बापू की छाती पर कठिन वेदना से विलाप करने लगे। और पंडितजी तो...ओहो!... भगवन्, ऐसा दिन तो दुश्मन को भी देखने को न मिले! नन्हे बच्चे की तरह सरदार दादा की गोद में मुँह छिपाकर, बिलख-बिलखकर रोने लगे। फिर हम जैसों की तो बात ही क्या थी?

अंतिम स्मृति की प्रसादी : देखते-देखते लाखों की भीड़ जुट गयी। करीब घण्टेभर तक यह सब चलता रहा। आखिर सरदार दादा ने अपने लौहपुरुष के बाने के अनुरूप इस कठोरतम परीक्षा को भी पास करने में कोई कोर-कसर नहीं दिखायी। अकेले वे ही सभी को ढाढ़स बँधा रहे थे। बापू के चश्मे और चप्पल का कहीं पता न था। तारीख 30 को प्रार्थना में जाने से पूर्व बातचीत करते हुए बापू ने खुद ही अपने नख काटे और मुझे फेंकने के लिए दिये थे। लेकिन मैं रसिक भाई और ढेबर भाई से बातें करने में उलझी रही, इसलिए वे कागज पर के नख वैसे ही रह गये। मैंने उन्हें अनमोल रत्न की तरह उठाकर सन्दूक में रख दिया (उनमें एक अँगूठे का, एक उँगली का और एक छोटी उँगली का भी नख था।)। इसे मैंने आज उनके शरीर का अन्तिम स्मृति की प्रसादी के रूप में अपने पास सुरक्षित रख लिया।

हमारे बापू! : अन्त में लार्ड माउण्ट-बैटन सभी को शान्त करने लगे। बाहर की भीड़ पूज्य बापू का समाचार सुनने के लिए आतुर है, इसलिए सरदार दादा ने रेडियो पर सारी बातें प्रसारित कर दीं। पंडितजी तो बोल ही नहीं पाते थे। सारी हिम्मत बटोरकर बोले : ''हमारे बापू...'' फिर एक गहरी साँस छोड़कर सिसकते हुए कहा : ''बापू अब हमारे पास नहीं रहे।''...उस समय तो धरती भी काँप उठे, इस तरह जनता बिलख उठी।

शायद बापू जाग जाएं! : ...इसी बीच विभिन्न देशों के राजदूत आते हुए दीख पड़े। उनके साथ पंडितजी भीतर आये। सतत गीता-पाठ करने में मैं ही प्रमुख थी। भाई साहब और काका सारी व्यवस्था करने के निमित्त बार-बार बाहर आते-जाते थे। सुशीला बहन तो थी ही नहीं। और सबसे श्लोक कहते नहीं बनते थे। प्यारेलालजी भी व्यवस्था में लगे हुए थे। फिर पंडितजी कहने लगे : ''मनु! और जोर से गीता-पाठ करो, शायद बापू जाग जाएँ!'' इतने वैज्ञानिक विद्वान होकर भी वे क्षणभर सब कुछ भूलकर बार-बार आते और बापू के शरीर पर हाथ फेरकर जाते थे, मानो स्वयं भूल तो नहीं कर रहे हों कि बापू सचमुच नहीं हैं।

महात्मा गांधी की जय! : और कैमरे वालों का तो पूछना ही क्या है? छत पर मंच बनाया गया और बापू का शव लाया गया। उसे देख छोटे-बड़े, आबाल-वृद्ध सभी की आँखों से अविरल अश्रुधाराएँ बह पड़ीं, मानो चारों ओर से बारिश ही हो रही हो। 'महात्मा गांधी की जय' के नारों से आकाश गूँज उठा। देखते-देखते जनता की श्रद्धांजलियों के साथ फूलों और पैसों का ढेर ही लग गया। सर्वधर्मों की समानतापूर्वक प्रार्थना जारी थी।

दो बजे बापू की देह को नहलाने के लिए बाथरूम में ले जानेवाले थे। लेकिन अच्छा हुआ कि पूज्य शान्तिकुमार भाई आ पहुँचे। वे पूज्य बा के अन्तिम समय में भी उपस्थित थे और आज बापू के भी! उन्होंने हिन्दूधर्मानुसार अन्त्यविधि करायी, याने अर्थी बनाना, गाय के गोबर से सारी जमीन लीपना आदि। यदि वे यह सब न बतलाते, तो साधारणतः हममें से कोई भी यह नहीं जानता था।

यह घड़ी भी उतनी ही भयंकर थी। बापू की देह बाथरूम में लायी गयी। एक-एक कपड़ा उतारा गया। बापू की आस्ट्रेलियन ऊन की शाल गोली से छिद गयी थी और तीन जगह जल भी गयी थी। धोती और चादर भी खून से सराबोर थीं।

बापू की देह पटरे पर सुलायी गयी। रक्त बहते हुए चरण 'भाई एकलो जाणे रे' गीत की इस कड़ी को साकार कर रहे थे। काका और हम सब इस तरह आर-पार बिंधे हुए बापू के शरीर को देख फूट-फूटकर रो रहे थे, फिर भी क्रूर विधाता को दया नहीं आयी! हमारी हृदय-विदारक चीखों से किसे क्योंकर दया आये? कारण हम लोग अत्यन्त पापी थे, फिर विधाता की दया की आशा कैसे रख सकते हैं? कड़कड़ाती सर्दी और हिम-सा ठण्डा पानी बापू की देह पर छोड़ने की कौन हिम्मत करेगा?...

बापू को नहलाकर पटरा कमरे के बीच रखा गया। उस पर सफेद खादी की चादर बिछायी गयी और बापू की देह को सुलाया गया। ...असह्य भीड़ हो जाने से बापू की देह ऊपर लायी गयी। देश-विदेश के दूत एवं प्रतिनिधि और सरकारी नौकर भारतीय शान्ति के सम्राट के अन्तिम दर्शन के लिए पहुँच गये थे। *('बापू की अंतिम झांकी' से)* ❑

अहिंसा-विवेचन

❑ रामनारायण उपाध्याय

> **''जियो और जीने दो या पारस्परिक क्षमा और सहिष्णुता जीवन का नियम है। यही शिक्षा है जो मैंने कुरान से पायी है, बाईबिल से पायी है, ज़ेन्द-अवेस्ता से पायी है, और गीता से पायी है।'' –गांधी**

गांधीजी के लिए अहिंसा जिन्दगी का सौदा था। उन्होंने प्राणार्पण करके भी अहिंसा की साधना की। वे अहिंसा के वैज्ञानिक प्रयोगकर्ता थे। उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में अहिंसा के प्रयोग किये और फिर एक अजेय शक्ति के रूप में उसे जगत के सामने रखा।

अपने अहिंसात्मक प्रयोगों के बारे में उन्होंने लिखा है, ''जो बात मैं कहना चाहता हूं और जो करके मरना चाहता हूं, वह यह है कि मैं अहिंसा को संगठित करूं। अगर वह सब क्षेत्रों के लिए उपयुक्त नहीं है तो वह झूठ है। मैं कहता हूं कि जीवन की जितनी विभूतियां हैं, सबमें अहिंसा का उपयोग है। याद रहे कि सत्य और अहिंसा मठवासी संन्यासियों के लिए ही नहीं है। अदालतें, धारासभाएं और इतर व्यवहारों में भी ये सनातन सिद्धांत लागू होते हैं।''

अहिंसा को एक वैज्ञानिक प्रयोग दर्शाते हुए उन्होंने लिखा है, ''मेरी अहिंसा एक वैज्ञानिक प्रयोग है। वैज्ञानिक प्रयोग में निष्फलता जैसी वस्तु के लिए कोई स्थान नहीं। निर्धारित परिणाम प्राप्त करते हुए अंतराल भी रास्ते में आते हैं। किन्तु प्रायः उनमें से बड़े-बड़े वैज्ञानिक आविष्कार होते देखे हैं।''

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में किये गये अहिंसात्मक प्रयोगों के बारे में आपका कहना है, ''मैंने जीवन के हरेक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग किया है। घर में, संस्थाओं में, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में, एक भी ऐसे मौके का मुझे स्मरण नहीं है, जहां अहिंसा निष्फल हुई हो। जहां पर कभी निष्फलता-सी देखने में आयी मैंने उसका कारण अपनी अपूर्णता को समझा है। मैंने अपने लिए कभी संपूर्णता का दावा नहीं किया। मगर मैं यह दावा करता हूं कि मुझे सत्य, जिसका दूसरा नाम ईश्वर है, की शोध की लगन लगी रही है। इस शोध के सिलसिले में अहिंसा मेरे हाथ आयी। इसका प्रचार मेरे जीवन का उद्देश्य है। मुझे अगर जिन्दा रहने में कोई रस है, तो वह सिर्फ इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए ही है।''

गांधीजी अहिंसा को करोड़ों की वस्तु मानते थे। इस संबंध में उन्होंने लिखा है, ''अहिंसा अगर व्यक्तिगत गुण है, तो वह मेरे लिए त्याज्य वस्तु है। मेरी अहिंसा की कल्पना व्यापक है। वह करोड़ों की है। मैं तो उनका सेवक हूं। जो चीज करोड़ों की नहीं हो सकती वह मेरे लिए त्याज्य है। हम तो यह सिद्ध करने के लिए पैदा हुए हैं कि सत्य और अहिंसा केवल व्यक्तिगत आचार के नियम नहीं हैं। यह समुदाय, जाति और राष्ट्र की नीति हो सकती है।''

''मेरा तो यही स्वप्न है। इसी को मैंने अपना कर्तव्य माना है। चाहे सारा जगत मुझे छोड़ दे, तो भी मैं इसे नहीं छोड़ूंगा। मेरी श्रद्धा इतनी गहरी है कि इसे सिद्ध करने के लिए ही जिऊंगा और उसी प्रयत्न में मरूंगा। मेरी श्रद्धा मुझे नित्य नया दर्शन कराती है। आज तो अहिंसा के नित्य नये-नये चमत्कार मैं देखता हूं। रोज नया दर्शन और नया आनंद मुझे मिलता है। मेरा यह विश्वास है कि ''अहिंसा हमेशा के लिए है, यह आत्मा का गुण है, इसीलिए यह व्यापक है।''

उन्हें अहिंसा को राष्ट्रीय पैमाने पर स्वीकार किये बिना चैन नहीं था। इस संबंध में उन्होंने लिखा है, ''मैं यह मानता हूं कि अहिंसा को राष्ट्रीय पैमाने पर स्वीकृत किये बगैर वैधानिक या लोकतंत्रीय शासन जैसी कोई चीज नहीं हो सकती। इसलिए अपनी शक्ति को मैं इस बात का प्रतिपादन करने में लगता हूं कि अहिंसा हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनैतिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जीवन का नियम है।''

अहिंसा एक सतत विकासशील शक्ति रही है। इस संबंध में उन्होंने लिखा है, ''सत्य और अहिंसा में मेरी श्रद्धा बढ़ती ही जाती है। और जीवन में जैसे-जैसे इस पर अमल करता जाता हूं, मैं भी बढ़ता जाता हूं। उसी के साथ मेरे विचारों में नयापन आता है। इसीलिए चरखा संघ, हरिजन संघ और ग्रामोद्योग संघ आदि संस्थाआं के सामने मैं बराबर नया विचार रखता आया हूं। इसका मतलब यह है कि ये संस्थाएं और उनके संचालक जिन्दा हैं, और वृक्ष की तरह वे नित्य बदलते रहेंगे। नये-नये बने रहेंगे। उनका गुण भी तो यही है कि वे बढ़े, गतिमान हों, नहीं तो गिर जायेंगे। मैं चाहता हूं कि आप भी मेरे साथ विकास की ओर बढ़ें।''

अहिंसा के विकास की कहानी की चर्चा करते हुए आपने लिखा है, ''जहां से कुछ भी ऐतिहासिक प्रमाण मिलने शुरू हुए हैं, उस काल से लेकर आज तक के जमाने पर नजर डालते हैं, तो हम देखते हैं कि मनुष्य अहिंसा मार्ग पर ही चलता है।''

अहिंसा को आत्मा का गुण दर्शाते हुए आपने कहा है, पशु रूप में तो मनुष्य हिंसक ही है। जब मनुष्य को आत्मा की भान होता है, तब वह हिंसक रह नहीं सकता। या तो वह अहिंसा सीख जायेगा या नाश को प्राप्त होगा। इसीलिए पैगंबरों ने सत्य, एकता, भ्रातृभाव, संयम और न्याय आदि का उपदेश दिया है।''

पुराने जमाने की व्यक्तिगत अहिंसा का जिक्र करते हुए लिखा है, ''पुराने जमाने में भी अहिंसा थी। लेकिन वह हमेशा व्यक्तिगत रही है। पीछे वे आदमी या तो पहाड़ों में भाग गये या देहात के एकांत में पड़े रहे। सार्वजनिक हित में उन्होंने कोई रस नहीं लिया।''

''मैंने एक नया सिलसिला जारी किया है। जो अहिंसा व्यक्ति तक ही सीमित होती है वह परम धर्म नहीं है। मैं उस अहिंसा का हिमायती हूं जिसका पालन दुनियादारी में रहकर हो सकता है। एक आदमी संसार को

छोड़कर यदि अहिंसा का पालन करे और ऐसा मोक्ष पाये तो मुझे ऐसा मोक्ष नहीं चाहिए। मैं नहीं चाहता कि मैं अकेला मोक्ष को पाऊं और दूसरे उससे वंचित रहें। दूसरों की सेवा करते-करते ही मुक्ति मिल सकती है।''

गांधीजी अहिंसा के शास्त्रकार नहीं वरन् प्रयोगकर्ता थे। इस संबंध में उन्होंने लिखा है, अहिंसा का शास्त्र लिखना मेरे लिए नामुमकिन है, मैं शास्त्रकार नहीं मैं तो कर्मी, काम करने वाला हूं। जैसा मुझे आता है, वैसा कर्म धर्म समझकर करता चलता हूं। उसमें से शास्त्र की रचना की जा सकती हो तो भले ही की जाये।''

अहिंसा को विश्वधर्म सिद्ध करते हुए उन्होंने लिखा है, ''जिस तरह हिंसा को हिंसा से नहीं मिटाया जा सकता, उसी तरह एक बम से दूसरे बम को नहीं मिटाया जा सकता। इंसान सिर्फ अहिंसा के मार्फत ही हिंसा के गढ़ से निकल सकता है। नफरत को सिर्फ प्यार से ही जीता जा सकता है। नफरत के सामने नफरत दिखाने से वह और भी फैलती और गहरी होती है।''

''जब तक बड़े-बड़े राष्ट्र अपना निःशस्त्रीकरण करने का साहसपूर्वक निर्णय नहीं करेंगे, तब तक शांति स्थापित होने की नहीं। मेरे हृदय में तो लगभग आधी सदी के निरंतर अनुभव और प्रयोग के बाद पहले कभी ऐसा विश्वास नहीं हुआ जैसा कि आज है कि केवल अहिंसा में ही मानव जाति का उद्धार निहित है। बाइबिल की शिक्षा भी, जैसा कि मैं उसे समझता हूं, यही है।''

गांधीजी अहिंसा के कलाकार थे। इस संबंध में कुछ सूत्रवाक्य सुनिए—

''मैं तो अहिंसा का कलाकार हूं, ऐसा मेरा दावा है।''

''जियो और जीने दो या पारस्परिक क्षमा और सहिष्णुता जीवन का नियम है। यही शिक्षा है जो मैंने कुरान से पायी है, बाईबिल से पायी है, ज़ेन्द-अवेस्ता से पायी है, और गीता से पायी है।'' ❑

महात्मा गांधी : महान विचारकों की नजर में

❑ **किशनगिरि गोस्वामी**

महात्मा गांधी की अहिंसा के प्रति आस्था और सत्य के साथ अनगिनत प्रयोग सारे विश्व के लिए प्रेरणास्रोत बने, जो आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। ये इसी तथ्य से समझा जा सकता है कि दुनिया में महात्मा गांधी पर जितने भी शोध हुए हैं और हो रहे हैं तथा जिस गति से पूरे संसार में *'गांधीयन स्टडीज संकाय'* की स्थापना हो रही है, वो उनकी सार्वभौमिक उपस्थिति की गुणात्मक उपयोगिता की सहज स्वीकारोक्ति है।

लुई फिशर गांधी के बारे में लिखते हैं, ''भारत ने सदा ही अपना सर्वोत्तम दुनिया को दिया। यह वो धरती है, जहां बुद्ध ने जन्म लिया। वही बुद्ध जिन्हें मानने वालों की संख्या देश से बाहर करोड़ों में है, लेकिन भीतर मुट्ठीभर! कालांतर में यही मिट्टी दुनिया को गांधी जैसा द्रष्टा सौंपती है, पर वे भी कहीं गुम हो जाते हैं। मेरा सवाल यह है कि भारत में जो गांधीवादी हैं, क्या वे सच में उनकी राह पर चल रहे हैं? कहीं गांधी एक खोए हुए महात्मा तो नहीं? क्या उस फरिश्ते की चमक अपनी ही धरती पर मिट रही है? यही आज का ज्वलंत प्रश्न है, जिसकी छानबीन जरूरी है। क्योंकि इसके जवाब से ही वर्तमान मजबूत होगा और भविष्य की सुस्पष्ट दिशा तैयार होगी।''

मार्टिन लूथर किंग के साबरमती आश्रम से गुजरते हुए कथन पर जब नजर पड़ती है, तब ऐसा लगता है कि मानो गांधी अपनी जादुई शख्सियत के साथ हमारे आसपास ही हैं। हम अपनी 'रिस्क' पर ही उनकी अनदेखी कर सकते हैं क्योंकि गांधी एक व्यक्ति नहीं विचार थे। मार्टिन लूथर किंग कहते हैं— ''बौद्धिक और नैतिक संतुष्टि जो मुझे बेंथम और मिल के उपयोगितावाद में...मार्क्स और लेनिन के क्रांतिकारी सिद्धांतों में...रुसो के 'प्रकृति की ओर लौटो' की अवधारणा और आशावाद में...नीत्से के अमितानवतावादी दर्शन में...नहीं मिल सकी, वो मैंने गांधी के अहिंसावाद-दर्शन में प्राप्त की।

जीवन जीने का सबसे सरल रास्ता सत्य के साथ प्रयोग है। यही कारण है कि हो *ची मिन्ह* ने भी माना कि, ''मैं और दूसरे लोग क्रांतिकारी होंगे, लेकिन हम सभी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से महात्मा गांधी के शिष्य हैं, इससे न कम, न ज्यादा!''

महान सामाजिक कार्यकर्ता *सीजर चावेस,* महात्मा गांधी से काफी प्रभावित थे। वे अमेरिकी नागरिक अधिकार आंदोलन के एक प्रमुख नायक थे। *चावेस* कहते हैं कि, *''महात्मा गांधी ने अहिंसक आंदोलन की चर्चा ही नहीं की, बल्कि संसार को यह भी बताया कि कैसे अहिंसात्मक साधन हमें न्याय और मुक्ति जैसे साध्य के करीब लाते हैं।''*

मार्टिन सुआरेज ने अपनी पुस्तक 'पोप गोज टू अलास्का' में लिखा है, ''अगर जीसस और बुद्ध होने की राह चाहिए, तो गांधी को समझ लिजिए।'' हाल ही में अमरीका के जाने-मान राजनीतिक विचारक *कॉर्ल दचेज* ने मानवीय सभ्यता को संवारने वाले महानायकों की खोज शुरू की। इसमें जिस छवि से वे सबसे ज्यादा प्रभावित हुए, वो महात्मा गांधी रहे। महात्मा गांधी के जीवन-दर्शन और चिन्तन को *'डेथ लेस'* और *'बियॉन्ड डेथ'* कहते हुए समाजशास्त्री *सोरोकिन* ने अपनी पुस्तक *'दि रिंकस्ट्रक्शन ऑफ ह्यूमिनिटी'* विश्व को समर्पित की है।

महात्मा गांधी ने यह मानकर सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस ले लिया था कि संघर्ष विराम का संघर्ष ही भारत को स्वतंत्रता के करीब ला सकता है। पर नेताजी सुभाषचंद्र बोस को यह नागवार गुजरा! तब पं. नेहरू ने उन्हें तल्ख लहजे में कहा था कि ''भारत के डॉक्टर महात्मा गांधी हैं। वे जनता की नब्ज को जानते और समझते हैं। उन्हें पता है कि कब-क्या करना है।'' नेहरू बिल्कुल सही थे, क्योंकि अंग्रेजों ने हिंसात्मक तरीके से आंदोलन को कुचलने का मन बना लिया था। वो ऐसे डॉक्टर थे, जो इशारो-इशारों में बहुत कुछ कह गये।

यह दुर्भाग्य ही है कि गांधी के देश में आज बात-बात पर हिंसा और उबाल दिखता है। विश्व भी आतंकवाद और अन्य तरह की कलह में उलझा हुआ है। यहीं पर हमें मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' के किरदार सूरदास की याद आती है, जो कहता है कि, ''हम हिंसात्मक प्रवृत्ति से लड़ाई नहीं जीत सकते, अगर आततायी शोषकों से लड़ना है तो हमें अपने मन पर विजय पानी होगी। हम हार भी गये तो क्या हुआ? हम हिंसा नहीं करेंगे।'' यानि लेखक के रूप में प्रेमचंद बापू के सिद्धांतों को अपने किरदारों की जुबान पर ले आते हैं। सच तो यह है कि गांधी की अहिंसा वैचारिक शुद्धिकरण भी था। उनकी नजर में कोई अलग नहीं था, बल्कि सब समान थे। ❑

विनम्र श्रद्धांजलि

क्रांति के बीज

❑ न्याय. चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

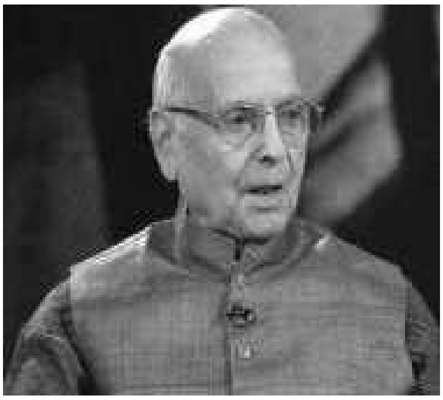

जन्म : 20 नवंबर 1927 निधन : 03 जनवरी 2019

न्याय. चंद्रशेखर धर्माधिकारी सर्वोदय परिवार के एक स्तम्भ थे, जिनके देहावसान से सर्वोदय परिवार की अपूरणीय क्षति हुई है। हमने अपना एक मार्गदर्शक खोया है। पद्मविभूषण न्यायमूर्ति चंद्रशेखर धर्माधिकारी सुविख्यात गांधीवादी दादा धर्माधिकारी के सुपुत्र थे, जिन्होंने गांधी के सेवाग्राम आश्रम में गांधी के सान्निध्य अपनी शैशवास्था गुजारी और पले-बढ़े। न्याय. धर्माधिकारी को व्याख्यान की कला अपनी पिता से विरासत में मिली और उन्होंने इस विरासत को भलीभांति आगे बढ़ाया। जब हम इन्हें सुनते तो लगता कि जैसे दादा ही व्याख्यान दे रहे हों। सामाजिक और न्यायिक क्षेत्र में उन्होंने बड़ा योगदान किया।

विनम्र श्रद्धांजलि के रूप में उनका यह विचारोत्तेजक आलेख 'क्रांति के बीज' यहां प्रस्तुत है। –सं.

आज हम जिस दौर से गुजर रहे हैं, उसमें गांधी विचार क्रांति का साधन बन सकता है क्या? यह हमारे सामने का यक्षप्रश्न है। क्रांति का अंकगणित नहीं होता, उसके प्रतीक होते हैं। चरखा, झाड़ू, सामुदायिक प्रार्थना, ये गांधी के समाज परिवर्तन तथा क्रांति के प्रतीक थे। गांधीजी ने कहा था कि ''चरखा यह मेरे विधायक कार्य के सूर्यमंडल में का सूर्य है।'' हमें यह जान लेना चाहिए कि गांधी के पूर्व भी इस देश में चरखा था। ईसवी सन् 1770 में बंगाल में अकाल पड़ा। उस समय टी. एच. कोलबुक इस अंग्रेज अफसर ने चरखे को किसानों को अतिरिक्त यानी पूरक धंधा देने के लिए प्रचलित किया, ताकि किसान की बदहाली अकाल काल में भी कुछ हद तक कम हो सके। तब तक शायद खुद गांधी भी चरखे के बारे में जानते नहीं थे। लेकिन कोलबुक इस अंग्रेज अफसर के चरखे में और गांधी के चरखे में आमूलाग्र भेद या फर्क है। गांधी के चरखे के साथ 'स्वदेशी' की भावना जुड़ी थी, और 'विदेशी' वस्त्र का बहिष्कार भी उसी भावना का परिणाम था। मौलाना मुहम्मद अली ने तो यहाँ तक कहा था कि, ''गांधी का चरखा यह दुनिया की सबसे अद्वितीय 'तोप' है, जिसका गोला छह हजार मील मॅंचेस्टर में जाकर गिरा; और तकली इंग्लैण्ड के सिर पर जा बरसी।'' गांधीजी ने चरखा और तकली, यानी खादी को 'स्वदेशी' और स्वावलम्बन के साथ ही हृदय परिवर्तन, समाज परिवर्तन तथा संदर्भ परिवर्तन का प्रतीक माना। क्रांति की प्रक्रिया में प्रतीक दो तरह के होते हैं, एक 'चित्रात्मक' यानी सिम्बॉलिक ऑर दूसरा 'क्रियात्मक'। क्रियात्मक प्रतीक आचरण में शरीक होता है। चरखे में शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा भी अभिप्रेत है। यही अहिंसक कार्यक्रम की कसौटी है। निष्ठा से चरखे पर सूत कातने वाला, और जीविका के लिए जो खादी का उत्पादन करता है, इन दोनों में हार्दिक अपनापन निर्माण हो, यह हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया भी इसमें निहित थी। 'काते सो पहने - पहने सो काते' यह सिर्फ नारा या घोषवाक्य नहीं है, वह विचार और आचार प्रणाली है। उत्पादक परिश्रम की प्रतिष्ठा यह सांस्कृतिक और आध्यात्मिक कार्यक्रम का एक हिस्सा है। 'स्वदेशी सिर्फ वस्तु नहीं होती, वह एक वृत्ति है। आत्ममर्यादा, आत्मविश्वास और आत्मविकास की भूमिका का भारत के लोगों में निर्माण हो, इसलिए क्या करना चाहिए, यह प्रश्न आज भी उपस्थित है। स्वदेशी वृत्ति 'सार्वत्रिक' और प्रतिष्ठित हो, यह आज भी जरूरी है।

'चरखा' आर्थिक स्वावलम्बन और आर्थिक विषमता समाप्त करने का प्रतीक है। वह वर्ग निराकरण या वर्ग समन्वय का भी प्रतीक है। झाड़ू सामाजिक विषमता और जातिभेद समाप्ति का प्रतीक है। ब्राह्मण और सफाई कामगार यानी 'वाल्मीकि', यह जातिभेद तथा वर्गभेद समाप्त करने का 'झाड़ू' साधन माना गया। सिर्फ गंदगी साफ करने वाला कोई न हो यहाँ गांधीजी नहीं रुके, तो गंदगी साफ करने का औजार ब्राह्मण या सवर्ण भी अपने हाथ में ले, तो दूसरी ओर मजदूर का औजार, जिसका प्रतीक चरखा है, वह मालिक अपनी हाथ में ले, यह, आर्थिक और सामाजिक विषमता समाप्त करने के लिए जरूरी है, ऐसा गांधीजी मानते थे। 'झाड़ू' ब्राह्मण के हाथ और 'गीता' वाल्मीकि—सफाई मजदूर के हाथ हो यह क्रांति की पहल थी। जात-पाँत पर आधारित उच्च-नीच भावना तथा आर्थिक विषमता समाप्त करने के लिए गांधी ने झाड़ू और चरखे को प्रतीक माना, और सामुदायिक प्रार्थना को मानवनिष्ठ भारतीयता प्रस्थापित करने का साधन तथा प्रतीक माना, जिसमें पारस्परिक भलाई के लिए प्रार्थना करना निहित है। भिन्न जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भिन्न भाषिक, प्रादेशिक, समुदाय, एकभाव और समान भाव से रहें, और उसके लिए पारस्परिक के भलाई के लिए प्रार्थना करे, यही तो मानवनिष्ठ भारतीयता का प्रतीक है। ऐसी भूमिका गांधीजी द्वारा घोषित विधायक कार्यक्रमों की और विधायक संस्था की भी भूमिका थी। विधायक कार्यक्रमों द्वारा या विधायक कार्य करने वाली संस्था द्वारा, संदर्भ परिवर्तन भी अपेक्षित था। यह संदर्भ परिवर्तन सम्पत्ति के बाबत जो भूमिका है, यानी स्वामित्व के बाबत जो लोगों की भूमिका है उसमें भी परिवर्तन हो, और उसके द्वारा या उसी के साथ-साथ मनुष्य का मनुष्य से जो सम्बन्ध है, उसका भी शुद्धीकरण हो, और

इसी प्रक्रिया से लोकशिक्षण भी हो, यह विधायक कार्यक्रम और विधायक कार्य करने वाली संस्था का अधिष्ठान है। इसी प्रक्रिया में हृदय परिवर्तन की भूमिका भी निहित है। यह एक अनोखा वैज्ञानिक विचार था। विधायक कार्यक्रम सिर्फ 'कर्मकाण्ड' नहीं है, वह तो वैचारिक तथा मानवीय सम्बन्धों में परिवर्तन का साधन था, और है। शुरू में विधायक कार्यक्रम प्रतिकार और सत्याग्रह की तैयारी का कार्यक्रम माना गया था; आजादी हासिल करने के लिए। इसीलिए उसमें 'जोश' था। अब वह 'जोश' या 'आवेश' नहीं है। लेकिन विधायक कार्यक्रम का 'स्वतंत्र' मूल्य है, यह हम भूल रहे हैं। विधायक वृत्ति के सिवा विधायक कार्य खोखला है, वह सिर्फ 'कर्मकाण्ड' ही बनकर रह जायेगा, यह डर है।

सेवा का क्रांति से क्या सम्बन्ध है, यह प्रश्न उपस्थित किया जाता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सेवा निरंतर है। वह क्रांति से अधिक व्यापक और मानवीय है। उसके परिणाम भी दीर्घकालीन होते हैं। उसे 'उपकार' का भी कार्य कहा जाता है। लेकिन असल में 'उपकार' का अर्थ है दूसरे इनसान से नजदीकी स्थापित करना। अंग्रेजी में इसे 'फिलन्थ्रॉफी' कहते हैं। इस शब्द का मूल अर्थ है—'फालयस' यानी प्रेम, 'ॲथ्रफॉस' यानी मनुष्य। मनुष्य के प्रति प्रेम या स्नेह भावना से प्रेरित कार्य है वह है फिलॅथ्रॉफस, यानी 'उपकार' या सेवाकार्य। वैसे भी विधायक संस्था का अधिष्ठान है, 'सौहार्द' भावना। प्रचलित मूल्यों में परिवर्तन करने के लिए साथियों को जोड़ना पड़ता है। इसे आधार चाहिए, इसलिए 'संगठन' की आवश्यकता महसूस की गयी। ऐसी संस्था या संगठन में मुख्य है 'मनुष्य'। और संगठन के पीछे का विचार और कार्य उसका अधिष्ठान है। किसी तत्त्व के आधार पर व्यक्तियों का समूह एकत्रित होता है, तो 'परस्पर' सौहार्द यही ऐसी संस्था का स्थायी और महत्त्व का आधार होता है, सत्ता और सम्पत्ति नहीं। वह तो इस आधार में ही अड़चनें पैदा करती है। फिर संस्था व्यक्तिनिष्ठ, सत्तानिष्ठ, सम्पत्तिनिष्ठ बन जाती है। और कई बार वह जीविका का भी साधन बनती है। 'सेवा' और 'जीविका' इनमें द्वन्द्व निर्माण होता है। अंग्रेजी में तीन शब्द हैं, 'प्रोफेशन', 'वोकेशन', 'ऑक्यूपेशन'। जीविका के लिए किया जाने वाला व्यवसाय, सुख या आनन्द के लिए किया जाने वाला व्यवसाय, और लोकहित के लिए किये जाने वाला कार्य इनका समन्वय हो सकता है क्या? यही यक्ष प्रश्न है? जो प्रोफेशन होगा, वही 'वोकेशन' रहेगा और वही लोकसेवा का साधन होगा। यह त्रिवेणी संगम होगा तो क्रांति के बीज की उपज हो सकती है। अगर इन तीनों में विरोध भावना होगी, तो व्यक्तित्व का और समाज कार्य का नाश होता है। ऐसे विरोध के कारण ही संस्था 'कलुषित' और 'प्रदूषित' हो जाती है। फिर निहित स्वार्थ अधिक बलवान बनते हैं और संस्था की अवनति होती है। क्रांति का मतलब है संदर्भ परिवर्तन, समाज की प्रस्थापित परिस्थिति में बदलाव यानी समाज परिवर्तन, यह उसका साध्य है। इनसान का इनसान से जो सम्बन्ध है, उस आपसी सम्बन्ध में भी परिवर्तन होगा, तब ही तो सभी के जीवन विकास की दिशा में मार्गक्रमण करने की क्षमता निर्माण होगी। इसके लिए विधायक प्रतिभा की आवश्यकता है। प्रतिभा दो तरह की होती है, एक 'विधायक' दूसरी 'विध्वंसक'। विध्वंसक प्रतिभा के तीन लक्षण हैं। एक प्रतिशोध की भावना, दूसरा, दूसरे को या विरोधी को पराजित या समाप्त करने की भावना, और तीसरा, दूसरे के जीवन को ही मर्यादित करने की भावना। ये तीन भावना जहाँ होंगी, वहाँ जीवन मूल्यों को विकसित करने वाली क्रांति की भावना नहीं हो सकती। इसीलिए गांधीजी ने कहा है कि, 'संदर्भ परिवर्तन के लिए वैयक्तिक आचरण की पूर्वतैयारी के रूप में हृदय परिवर्तन की जरूरत है। लेकिन हृदय परिवर्तन प्रथम खुद का और बाद में दूसरों का! और जिन क्रांति के मूल्यों को सामाजिक जीवन में चरितार्थ करने की इच्छा होगी, वे मूल्य प्रथमतः खुद के जीवन में प्रस्थापित और कार्यान्वित हों, यह जरूरी है। इसे ही गांधी ने 'विधायक वृत्ति' कहा है। इसके लिए गांधी ने कार्यकर्ता के चारित्र्य पर जोर दिया और उसी के साथ तत्त्वनिष्ठा, और लोकनिष्ठा पर जोर दिया। आत्मप्रत्यय और स्वतंत्र स्वत्व पर भी जोर दिया। सत्तानिष्ठा या संस्थानिष्ठा इन्हें समाप्त या कलुषित कर देती है, ऐसा भी माना, और यह सारी शुरुआत खुद से हो यह 'मूलमंत्र' भी दिया। 'Corporation has no soul', संस्था की आत्मा नहीं होती, इस अर्थ का प्रसिद्ध वाक्य है। जिसमें आत्मा नहीं होगी, वह कार्य भी निःसत्त्व होगा ना? जिसके पास दूसरों को देने के लिए कोई भौतिक चीजें नहीं होतीं, उसके पास एक चीज होती है, जिसका नाम है 'आत्मप्रत्यय' और 'चारित्र्य' और इस चारित्र्य के व्यक्तिगत और सार्वजनिक ऐसे हिस्से नहीं होते, वह सम्पूर्ण चारित्र्य होता है। गांधी का वैशिष्ट्य था कि वह व्यक्ति या इनसान को मुख्य विभूति मानते थे। 'Man is the measure of every thing.' अर्थात 'मनुष्य ही प्रत्येक वस्तु का मापदंड है', यह उनकी भूमिका थी। सत्ता, सम्पत्ति, संस्था उनके लिए गौण थे। संस्था में भी सदस्यत्व की अपेक्षा 'सम्बन्ध' और 'सौहार्द' उनके लिए अहम था।

गांधी द्वारा विधायक संस्था के दो हेतु थे। एक था कि परिवर्तन या क्रांति की प्रक्रिया की पोषक मनोवृत्ति विकसित हो ऐसा मानस तैयार करना; और दूसरा हेतु था कि क्रांति या आजादी के बाद समाज कैसा होगा, इसका चित्र, ब्लू-प्रिंट या नमूना प्रस्थापित करना, जिस 'मॉडल' को लोग देख सकें और समझ सकें। आज तो दूसरी संस्थाओं के सारे दोष हमारी संस्थाओं में आ गये हैं। पद तथा सत्ता की आकांक्षा है, और सम्पत्ति का मोह है, इसीलिए तो इन संस्थाओं में भी चुनाव की प्रक्रिया ने प्रवेश किया। हिसाब देखने के लिए ऑडिटर आवश्यक बने। मालिक-मजदूर सम्बन्ध प्रस्थापित हुए, इसलिए 'अदालतबाजी' बढ़ी, वकील की जरूरत है! इन्हें 'नेसेसरी ईविल', अनिवार्य अशुभता मानें तो भी 'ईविल' को भूलकर हम 'नेसेसरी' की ओर बढ़े। इसमें दोष किसका है यह संदर्भहीन है। लेकिन यह असलियत है, इसे नकारा नहीं जा सकता।

असल में इस प्रक्रिया में गांधी यह व्यक्ति मुख्य नहीं है; मुख्य है विचार। इस विचार में प्रतिक्रिया प्रतिशोध में परिवर्तित न

हो, यही तो नम्र अपेक्षा थी। गांधी की लँगोटी और साधु-संन्यासियों की लँगोटी, इन दोनों में जमीन-आसमान का फर्क है। गांधी के वस्त्र 'करुणा दर्शक' हैं। एक के पास इतने वस्त्र हैं कि उन्हें पहनने के लिए उसे प्रसंग ढूँढ़ने पड़ते हैं; और दूसरे के पास लज्जा-रक्षण के लिए भी वस्त्र नहीं हैं। यह विषमता गांधी नहीं सह सका। इसी में से अस्तेय और अपरिग्रह के व्रत का जन्म हुआ। जीवन-संजीवन-उपजीवन इन सभी में मनुष्य की सहभागिता और पुरुषार्थ प्रत्यक्ष रूप से होना चाहिए, परोक्ष नहीं। यही तो विज्ञान-युग की भी माँग है। गांधीजी द्वारा आजादी के लिए जो आंदोलन किये गये उनसे गांधी के विधायक कार्य और रचनात्मक संस्था का अनुबंध था, इसीलिए उनका प्रभाव था। आज की समाज परिवर्तन की प्रक्रिया से विधायक संस्थाओं का अगर अनुबंध रहेगा, तो ही उनका प्रभाव पड़ सकता है। लेकिन वह अनुबंध धीरे-धीरे कम हो रहा है, यह आज की वास्तविकता है। जो क्रांति या परिवर्तन चाहते हैं उनके खुद के जीवन में इन क्रांति के मूल्यों का प्रारम्भ होगा, तभी तो उसमें शक्ति आएगी। इसलिए हृदय परिवर्तन से सभी परिवर्तन की प्रक्रियाओं का प्रारम्भ अपने ही जीवन से करना होगा, वरना दूसरों को तत्त्वज्ञान सिखाने वाले खुद सूखे पाषाण बनकर रहेंगे।

संस्था और संस्था चालकों की भूमिका क्या होनी चाहिए यह भी अहम प्रश्न है। भूमिका शब्द के दो अर्थ हैं। एक है 'रोल' और दूसरा है 'एटीट्यूड', वस्तुस्थिति या कार्य, और मनोवृत्ति। और उसमें भी समाज के लिए कौन-सी प्रमुख है। केवल कार्य या विधायक वृत्ति; या विधायक प्रेरणा। हमारे अपने जीवन में उसके कारण परिवर्तन हुआ है क्या? हमारी मनोवृत्ति में उसके कारण कुछ बदलाव आया है क्या? यही अहम सवाल है, जिसका उत्तर हमें ढूंढ़ना है। इसके लिए संस्था के अंतर्गत सौहार्द हो यह तो जरूरी है ही, लेकिन समानधर्मी संस्थाओं में भी आपस में सौहार्द की भावना हो यह उससे भी अधिक आवश्यक है। आज गांधी की आकांक्षा तो है, लेकिन 'लालसा' भिन्न है। यह अंतर्विरोध दूर करना, यही तो हमारा असली दायित्व है।

आज यंत्र की ओर समाज की पहल हो रही है। लेकिन यंत्र क्या है, यह भी समझ लेना आवश्यक है। अधिक से अधिक लोगों का काम, कम से कम लोगों के द्वारा, कम से कम समय में करवा लेने का साधन है यंत्र। इसके कारण इस देश में बेकारी बढ़ेगी। बेकारी और गरीबी दोनों का निवारण करने के लिए हर हाथ को काम मिले, ऐसी योजना आवश्यक है; और चरखा इसीका प्रतीक है। अधिक-से- अधिक लोगों को काम मिल सकता है, उस खादी की प्रक्रिया को गांधी ने 'सेन्ट-परसेन्ट' स्वदेशी कहा है। देश के लिए आवश्यक कपड़ा देश में ही बने यह स्वदेशी वृत्ति है, और जो बेकार हैं उन्हें काम भी मिले, यह 'सेन्ट-परसेन्ट' स्वदेशी वृत्ति है। यह नया आयाम गांधी की देन है। और उसी के साथ शरीर-श्रम का व्रत और शरीर-श्रम की प्रतिष्ठा ये मूल्य जुड़े हुए हैं। 'कपास' से 'कपड़ा' या वस्त्र स्वावलम्बन की भूमिका ही 'सेन्ट-परसेन्ट' स्वदेशी वृत्ति है। जो गरीब है, बेकार है, उन्हें किसी की मेहरबानी से जो मिलता है, उसमें शक्ति नहीं होती, वह उसे उसी के पराक्रम से मिले, यही तो शत-प्रतिशत स्वदेशी वृत्ति है। इस देश की तीन प्रमुख समस्याएं हैं। एक, देश की स्वतंत्रता का संरक्षण, दूसरी समस्या है भूख, गरीबी और बेकारी की, और तीसरी समस्या है मानवनिष्ठ भारतीयता और भारतीय लोकतंत्र की। 'भूख' का उत्तर है अन्न। इसलिए क्रांति की शुरुआत जहाँ अन्न की उपज होती है, और जो किसान वह करता है, उस खेत और किसान से होनी चाहिए। अन्न का उत्पादक जो किसान है, वही क्रांति की विभूति है। जिसे 'भूख' है, उसे अन्न मिलना चाहिए, इसलिए अनाज या अन्न की 'कीमत' नहीं होनी चाहिए, उसका सिर्फ 'मूल्य' होना चाहिए। आज तो सिर्फ 'मूर्ख' किसान अनाज बोता है; बाकी के सारे तो पैसे की ही पैदाइश करते हैं। आज तो महाराष्ट्र शासन ने 'अनाज' से भी मद्यनिर्मिति का कार्यक्रम बनाया है! किसान के प्रश्न पैसे देकर सुलझ सकते हैं, यह मान लिया गया है; जो कि अपसिद्धान्त हैं। और हम यह भूल गये कि इनसान सिर्फ पैसों में तोला नहीं जा सकता; और जिस उत्पादन प्रक्रिया की प्रतिष्ठा नहीं होती, उसमें किसान की रुचि नहीं रहेगी। अनाज बोने वाला किसान 'प्रतिष्ठा' का जीवन चाहता है। उसे पैसों से भी अधिक प्रतिष्ठा प्यारी है। इस प्रश्न की ओर गांधी की विधायक संस्थाओं ने अपेक्षित ध्यान नहीं दिया, यह दुर्भाग्यपूर्ण सत्य है।

वैसे भी जल, जंगल, जमीन ये विषय गांधी की विधायक संस्थाओं ने कभी ताकत से नहीं उठाये, और न ही उनके एजेंडा में उन्हें प्राथमिकता दी गयी। हम यह भी भूल गये कि भूखे को अन्न मिले, यह संस्कृति है, और वह उसका अधिकार भी है। और भूख न होते हुए भी जो पैसे वाले उसे खरीद सकते हैं, उन्हें 'अन्न' खरीदने का अधिकार रहे, यह 'विकृति' है। अन्न का सिर्फ मूल्य है कीमत नहीं, यह भावना विधायक संस्कृति की भावना है। अन्न का उत्पादन करने वाला किसान क्रांति का अग्रदूत है, यही गांधी विचार पर आधारित विधायक भावना है। तभी तो 'India's culture is agriculture', 'कृषिकर्म ही भारत की संस्कृति है', यह घोष वाक्य प्राणवान् बन सकेगा, और कृषि संस्कृति की प्रस्थापना हो सकेगी। किसानों की दुर्दशा और उनकी आत्महत्या शहरवासी उच्च वर्ग के लिए सिर्फ अखबार की खबर है; लेकिन असल में वह उनके जीवन-मरण का प्रश्न है, जिसकी ओर अनदेखी करना सिर्फ गलत ही नहीं, तो वेदनाकारी भी है।

आज हम संक्रमण काल से गुजर रहे हैं। पुराने मूल्य, पुरानी प्रतिष्ठाएँ जीर्ण होकर ढह रही हैं। नये मूल्य और नयी प्रतिष्ठाओं की स्थापना करनी है। जागतिकीकरण के नये युग में मूल्य-परिवर्तन की सिद्धि हममें से हरएक रचनात्मक कार्यकर्ता पर निर्भर है। इसके लिए शायद अनेक व्यक्तियों को आत्माहुति देनी पड़ेगी, जिससे जीवन अधिक प्राणवान् बनेगा, और नये समाज की निर्मिति हो सकेगी। परिस्थिति जितनी प्रतिकूल हो, पराक्रम के लिए उतना ही अधिक अवसर होता है, यही गांधी विचार का अंतिम सत्य है। *('आत्ममंथन की अनिवार्यता' से)* ❑

श्रद्धांजलि

गांधीवादी चिन्तक चंद्रशेखर धर्माधिकारी का निधन

वरिष्ठ गांधीवादी चिन्तक एवं न्यायमूर्ति चंद्रशेखर धर्माधिकारी का 3 जनवरी 2019 की रात 1.30 बजे नागपुर में निधन हो गया। वे 92 वर्ष के थे।

श्री धर्माधिकारी जी को श्रद्धांजलि देते हुए सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री महादेव विद्रोही ने कहा—श्री धर्माधिकारी जी के निधन से सर्वोदय परिवार ने अपना एक अभिभावक तथा मार्गदर्शक खो दिया है। न्यायमूर्ति धर्माधिकारी ने दादा धर्माधिकारी की परंपरा तथा सर्वोदय के विरासत को आगे बढ़ाया। वे सर्वोदय के अनेक संगठनों एवं संस्थाओं से जुड़े थे। हम जब कभी दुविधा में होते थे तो उनके पास पहुंचकर उनसे दिशा-निर्देश प्राप्त करते थे। उनके जाने से सर्वोदय आंदोलन का एक मजबूत स्तम्भ ढह गया है। आज जब गांधी विरोधी ताकतें मुखर होकर समाज में अस्थिरता एवं विषमता के बीज बो रहे हैं, उनके रहने का विशेष महत्त्व था।

न्यायमूर्ति श्री धर्माधिकारी का जन्म 20 नवंबर 1927 को पिता श्री दादा धर्माधिकारी और माता दमयंती धर्माधिकारी के घर रायपुर (मध्य प्रदेश) में हुआ। उनका परिवार स्वतंत्रता सेनानी का परिवार था। इन्हें भी सहज ही आजादी की लड़ाई का रंग लग गया। 1941 के व्यक्तिगत सत्याग्रह एवं 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में उन्होंने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, जिसके परिणाम-स्वरूप उन्हें तीन वर्ष की सजा हुई।

वे आरंभ काल से विभिन्न सामाजिक गतिविधियों से जुड़े रहे। वे राष्ट्रीय छात्र संघ के सचिव रहे और नागपुर के राष्ट्रीय मिल-मजदूर संघ के अध्यक्ष रहे। 1956 में उन्होंने बंबई उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय में वकालत की शुरुआत की। बाद में उन्हें बंबई उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया गया। इस बीच उन्हें वहां का कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश भी नियुक्त किया

न्यायमूर्ति चंद्रशेखर धर्माधिकारी

गया। 20 नवंबर 1989 को सेवानिवृत्त हुए। अपने कार्यकाल के दरमियान उन्होंने आदिवासियों, बच्चों, महिलाओं, मानसिक रोगियों आदि के मूलभूत अधिकारों के बारे में अनेक महत्त्वपूर्ण फैसले दिये।

उनकी पत्नी श्रीमती तारा धर्माधिकारी अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर थीं। वे महाराष्ट्र सरकार की जनसंपर्क विभाग की उपनिदेशक और 'लोकराज्य' की संपादक की जिम्मेवारियों का सफलतापूर्वक वहन किया। उनका 2 अप्रैल 2007 में निधन हो गया।

उनकी सेवाओं के लिए भारत के राष्ट्रपति ने उन्हें 2003 में पद्मविभूषण से सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त उन्हें गोपालकृष्ण गोखले पुरस्कार, राष्ट्रगौरव पुरस्कार, न्यायमूर्ति रानडे समाज सेवा पुरस्कार जैसे अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों से सम्मानित किया गया।

2014 में न्यायमूर्ति धर्माधिकारी की अध्यक्षता वाली समिति ने बारबालाओं पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने की सिफारिश की।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी ने उनकी पुस्तक 'एक न्यायमूर्ति का हलफनामा', 'गांधी विचार और पर्यावरण', 'लोकतंत्र, न्याय एवं राहों के अन्वेषी', 'स्त्री-शक्ति विमर्श', 'आत्ममंथन की अनिवार्यता' आदि प्रकाशित किया है। साथ ही उनकी अन्य रचनाएं—'गांधी मेरी नजर में', 'भारतीय संविधान अंतरंग' 'मानवनिष्ठ अध्यात्म' (मराठी), 'मंजिल दूरच राहली' (मराठी), 'शोध गांधीची' (मराठी), 'भारतीय न्याय प्रणाली', 'शोध माणसाचा', 'आम्हास आह्मी पुन्हा पाहावे' (मराठी) भी काफी चर्चित एवं महत्त्वपूर्ण हैं।

वे दहाणु तालुका एनवायरनमेंट प्रोटेक्शन अथॉरिटी के अध्यक्ष, विधि अनुवाद एवं परिभाषा सलाहकार परिषद् (महाराष्अट्र) के अध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य पशु कल्याण नियंत्रण समिति के अध्यक्ष थे।

सर्व सेवा संघ के अतिरिक्त वे गांधी रिसर्च फाउंडेशन, जमनालाल बजाज प्रतिष्ठान, शिक्षा परिषद्, मणि भवन, गांधी संग्राहलय, सेवाग्राम आश्रम, साने गुरुजी राष्ट्रीय स्मारक, फुजुई गुरुजी मेमोरियल ट्रस्ट, गांधी विचार परिषद् आदि संस्थाओं से निकट से जुड़े रहे। **–मारोती गावंडे, का. मं., ससेसं**

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

'बा' भारत वापसी

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं। –सं.

कस्तूरबा जानती थी कि उसके पति पूर्णता के चक्कर में यह भूल जाते हैं जिसे वह पूर्ण बनाना चाहते हैं उसे कितनी पीड़ा से गुजरना पड़ता है। उन्हें भी पीड़ा होती है। वे भले ही सहन कर लेते होंगे पर दूसरा टूट जाता है। वह दक्षिण अफ्रीका में स्वयं उस समय इस मानसिक पीड़ा से गुजरी थी जब उसने पेशाब का पॉट साफ करने के लिए मना कर दिया था। वह जानती थी कि पति को तर्कों से समझाना कठिन है कि उनका निर्णय गुनाह के मुकाबले अधिक सख्त है।

जब बा को पता चला कि मणिलाल को बड़े भाई के भूखों मर रहे परिवार की सहायता करने के अपराध में देश निकाला देकर, एक साल के लिए मद्रास अज्ञातवास में भेज रहे हैं। बा ने बापू से पूछा, 'क्या आप एक साल के लिए मणिलाल को बिना पैसा-कौड़ी के मद्रास भेज रहे हैं?'

उन्होंने बिना बा की तर देखे बिना एक ही वाक्य कहा, 'उसने आश्रम के नियमों का उल्लंघन किया है।'

'आप भी भाइयों की सहायता से यहां पहुंचे हैं। भाई के द्वारा भाई की मदद करना क्या पाप है?'

'हरि यहां आकर रहे, किसने मना किया। पश्चात्ताप करे। जो सब खाते हैं, वह भी खायेगा।'

'आपके लिए नियम जरूरी नहीं जितना जरूरी पश्चात्ताप करना, और माफी मांगना है।'

'मानसिकता बदलनी जरूरी है, पश्चात्ताप से बदले या दंड से...'

'आपने एक बेटे और उसके परिवार को कलकत्ता में भूखा मरने के लिए छोड़ दिया, दूसरे को मद्रास में...बिना पैसे-धेले के भूखा मरने को भेज दिया। मुझे तो आपके पास रहना है। मेरा इतना ही कहना कि नियमों को बेड़ियां न बनाओ, जिसे सजा मानकर सहन करने या तोड़ने के लिए मजबूर हो जाये।'

'तुम मां हो...'

'आप भी पिता होने के दायित्व से मुंह नहीं मोड़ सकते...।' कस्तूरबा उठकर चली गयी। बापू देर तक आंखें बंद किये बैठे रहे।

कुछ दिन बाद मोहनदास ने मद्रास के अपने प्रकाशक को मणिलाल के लिए पत्र लिखा कि वह अपने यहां उसे कोई काम दे दे। उसने पहले ढूंढ़ा और मणिलाल को अपने प्रिंटिंग प्लांट में काम दे दिया। कुछ ही दिन बाद मि. वेस्ट वापिस लंदन जाने वाले थे। बापू ने मणिलाल को वेस्ट का दायित्व संभालने, इंडियन ओपिनियन निकालने और रंगभेद संबंधी अहिंसक आंदोलन का संचालन करने फीनिक्स भेज दिया। बा को पता चला तो सबसे पहले यही मन में आया कि पता नहीं मणि को कब देखेगी? पर वह खुश थी कि बापू ने मणिलाल को विश्वास करके इंडियन ओपिनियन की जिम्मेदारी सौंपी।

1918 में वसंत के आसपास कस्तूरबा ने चंपारन से विदा ली। गांव की महिलाएं बा के जाने से दुखी और आहत थीं। इतने समय बा के साथ रहने के बाद उन्हें लग रहा था वे बेसहारा हो गयीं। वे कई बार उनके घरेलू मामलों का फैसला कराने बा के पास जाती थीं। जिसकी गलती हुई उसे डांट दिया। कस्तूरबा को इस बात का गर्व था कि वहां की महिलाओं ने उसके साथ मिलकर गांव में परिवर्तन लाने का काम किया है। चिन्ता इस बात की थी कि उसके जाने के बाद भी क्या महिलाएं इसको जारी रख पायेंगी? गांव के रास्ते साफ रहने लगे थे। हर वक्त आने वाली कचरे की बदबू लगभग बंद हो गयी थी। मच्छर भी पहले जैसे नहीं रहे थे। बच्चों, औरतों और मर्दों के कपड़े, न्यूनतम होने के बावजूद काफी साफ रहने लगे थे। मर्द जगह-जगह थूकने और लघुशंका करने में झिझकते थे। वह जाते हुए सब महिलाओं को समझाकर गयी थीं कि परिवर्तन की यह शृंखला टूटे नहीं।

साबरमती पहुंचने पर बा ने देखा कुछ थोड़े से लोग साबरमती के तट पर आश्रम निर्माण में जुटे हैं। लेकिन वहां किसी की जवाबदेही नहीं थी। इस बात ने बा के

आत्मविश्वास, उद्देश्य की संपूर्ति के प्रति निश्चिन्तता के लिए संशय जगा दिया था। सब कुछ निर्माणाधीन था। सड़कें बन रही थीं, उनके किनारे-किनारे पेड़ लगाये जा रहे थे। खड़ंजे बन रहे थे। सफेदी हुए भवनों का गुच्छा सा बन गया था, कुछ बन रहे थे। जो बन गये थे उनमें से कुछ में स्कूल, कताई-बुनाई केन्द्र और घर थे। पत्थर की सीढ़ियां साबरमती नदी तक बन गयी थीं। पास ही हरी घास का मैदान था। वहां सूर्योदय और सूर्यास्त के समय प्रार्थना सभा होती थी। यह देखकर कस्तूरबा को लगा कि कोई मुसाफिर अनजान जगह आ गया है। लेकिन एक दिन वही अनजान जगह बा का सबसे ज्यादा अपना घर होने वाला था।

महिलाएं दिलो-जान से कताई में जुटी रहती थीं। बापू का स्वप्न था इस प्राचीन घरेलू उद्योग की स्थापना करके, आश्रम में कती खादी के माध्यम से देश के गांवों के विकास में सहायक बनें। लेकिन हाथ से खादी कातकर सूत बनाने की कला खो चुकी थी। इसलिए कोचराब आश्रम में स्थानीय मिलों से सूत खरीदकर इस्तेमाल किया जाता था। उधर आश्रम में चरखा आ गया था। मगनलाल ने कुछ परिवर्तन करके नया चरखा बनाया था। बा ने तत्काल उस नये चरखे पर कातना शुरू कर दिया था। बापू समेत सब आश्रमवासी चरखे के उस विकसित मॉडल पर रोज घंटा भर कातते थे। बा भी उस चरखे पर कातती थी। जिसका नतीजा हुआ बा आश्रम की श्रेष्ठतम चरखावाज हो गयी। बापू का जैसे-जैसे यश फैलता गया लोग आश्रम से जुड़ते गये। उनमें से कुछ आश्रम के अंतेवासी बन गये। पूरा आश्रम आगन्तुकों से भरा रहने लगा। बापू के लिए सारा संसार ही उनका अपना परिवार था। बा भी बापू की इस मान्यता को अपने धर्म और जीवन-सत्य के रूप में देखने लगी थी।

उधर बा को हरि के बारे में तरह-तरह की चर्चाएं सुनने को मिली थीं। सबसे अधिक चिन्ता इस बात की थी कि वह एक काम के बाद दूसरा काम और नौकरियां बदल रहा था। इधर वह काफी आर्थिक हानि का शिकार हुआ था। नया काम चलाने के लिए काफी कर्ज ले चुका था। एक सेवायोजक और अपमानजनक पत्र लिखा था। बा अपनी बहू गुलाब के पांचों बच्चों के लिए परेशान थी। जून 1918 में एक दिन गुलाब बच्चों को लेकर बिना किसी सूचना के आश्रम पहुंच गयी। कस्तूरबा की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वह जितनी खुश थी उतनी ही चकित भी थी। बा ने जिद करके उन सबको अपनी कुटिया में ही रखा। बा चाहती थी कि वह अपनी बहू गुलाब से अकेले में बात करे। दरअसल वह फूल सी गुलाब की हालत देखकर दुखी थी। वह पूरी तरह बदल चुकी थी। उसका खिलन्द्रापन गायब हो गया था। कस्तूरबा ने जिस सोलह वर्षीय बहू की दक्षिण अफ्रीका में अगवानी की थी वह छब्बीस साल की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते पूरी तरह थक चुकी थी। उस गुलाब और इस गुलाब में कोई समानता नहीं रही थी।

गुलाब को जब सासू मां का सहारा मिला तो उनके सामने अपना दिल खोलकर रख दिया। बा जो सुन रही थी वह सब सच था। हालांकि हरिलाल की मां होने के कारण वह उन बातों पर विश्वास नहीं करना चाहती थी। अपने आप पर से और जीवन पर से हरिलाल का विश्वास समाप्त हो चुका था। उसके मन में इस बात से कटुता आ गयी थी कि उसके पिता ने उसके साथ अन्याय किया था। अपने आसुओं पर नियंत्रण करते हुए गुलाब ने बताया कि उसका पति किस प्रकार, गलत लोगों की सोहबत के कारण, बुरी आदतों का शिकार हो चुका है। उसके वर्तमान मालिक ने भी उसे नौकरी से निकाल दिया। यह सब बयान करते हुए गुलाब फूट-फूटकर रो पड़ी। बा कुछ बोल नहीं रही थी पर उसका हृदय फटा जा रहा था। कलकत्ता के कुछ मित्रों ने घर के कठिन हालात देखकर, गुलाब और बच्चों का रेल का किराया देकर साबरमती आश्रम भेजा था। साबरमती आश्रम से जाकर गुलाब बच्चों के साथ अपने पीहर में रहने वाली थी। पहले तो हरिलाल की आदतों के बारे में जानकर बा को गुस्सा आया। चूंकि गुस्सा कस्तूरबा के स्वभाव में नहीं था इसलिए वह तुरंत ही दुख में बदल गया। गुलाब और बच्चों के लिए प्रवाह बह निकला, वह हरिलाल के लिए भी उतना ही था। सभी को बा के संरक्षण की जरूरत थी।

बा ने हफ्तों, घंटे दर घंटे अपने पोते-पोतियों के साथ बिताये। वह बच्चों को स्वयं नहलाती थी, कहानियां सुनाती थी, गाने सिखाती थी। बड़ी बेटी रामी का सिर धोती थी, बाल बनाती थी और निहारती रहती थी। उसकी शक्ल में बचपन का हरि झलकता थां दादी होने का सुख बा को सबसे पहले रामी ने ही दिया था। अपने हाथ से मिठाई बनाकर पोते-पोतियों को खिलाती थी। बच्चों को साथ घुमाने ले जाती थी। गुलाब से देर रात तक बातें करती थी। बच्चों के चेहरे पर मुस्कुराहट देखकर निहाल हो जाती थी। बच्चों की हंसी ने कुटिया को घर बना दिया था। गुलाब की फुर्ती और आत्मविश्वास लौट रहे थे। बा को इस बात से सुख मिल रहा था, वे सब जो उन्हें प्यारे थे, दूसरों को भी आनंद दे रहे थे।

आखिर उन सर्वाधिक प्रिय मेहमानों की विदाई का क्षण आ गया। गुलाब का स्वास्थ्य पहले से बेहतर हुआ था पर अभी भी वह दुबली थी। आंखों में आश की चमक आने लगी थी जो इस बात का संकेत था कि वह अपनी विधवा मां के साथ कुछ दिन रहकर, जल्दी हरिलाल के पास कलकत्ता लौट जायेगी। कस्तूरबा स्वयं उनको स्टेशन छोड़ने गयी। बा के चेहरे पर मुस्कुराहट तब तक बनी रही जब तक गाड़ी नहीं चली। फिर लौटकर वह आश्रम के दैनंदिन जीवन में लग गयी पर कठिनाई महसूस होती रही। अंदर बेचैनी थी। अकेलापन सांध्य अंधेरे की तरह बढ़ता गया। बापू यात्रा पर थे। बा ने बापू के पास संदेश भेजा, वह भी उनकी यात्रा से जुड़ना चाहती है। *...क्रमशः अगले अंक में*

शख्सियत

गंगाप्रसाद अग्रवाल : प्रेरणादायी अमृतमय जीवनधारा

'गंगा तेरा पानी अमृत।'
गंगा की धारा 96 साल तक बहती रही।
अपने अमृतमयी विचाराधारा का सिंचन करती रही।
उसके अमृत कणों ने कई युवाओं का जीवन समृद्ध बनाया।

1967 के बिहार के अकाल में जयप्रकाशजी के आवाहन पर उनके सोखोदेवरा आश्रम में हुए राहत शिविर से लौटने के बाद तरुण शांति सेना का कार्य हमने यवतमाल जिले में शुरू किया। उस समय आया हुआ प्रथम अभिनंदन पत्र 'बसमतनगर' से श्री गंगाप्रसादजी अग्रवाल का था। तब इस नाम से हम अपरिचित थे। उनके काम का परिचय का सवाल ही नहीं था। धीरे-धीरे परिचय बढ़ता गया। उन्हें हम प्रसादजी, प्रसाद काका, गंगा काका नाम से पुकारने लगे। तरुण शांति सेना के माध्म से वे सर्वोदय परिवार में दाखिल का शिविरों के माध्यम से युवा साथियों ने अनुभव किया। सर्वोदय परिवार को आखिर तक वरिष्ठ साथी बनकर 'जीने के राह' बताते रहे। अपने भाषण का प्रारंभ या समापन वे शेरोशायरी से करते थे। उनकी शिक्षा शुरू से ही उर्दू में हुई थी। परिवार में भाई लोग बेपार में लगे थे। उनके सभी सामाजिक कार्यों को परिवार का समर्थन प्राप्त था। उनके परिवार की जिम्मेवारी संभालकर उन्हें देश कार्य करने में सहायता की थी। गांधीजी के आजादी आंदोलन, विनोबाजी के भूदान आंदोलन और जयप्रकाशजी के संपूर्ण क्रांति आंदोलन में शरीक होकर जेलयात्रा की थी। साने गुरुजी द्वारा स्थापित राष्ट्रसेवा दल से वे समाजवादी संगठन में दाखिल हुए। समाजवाद से सर्वोदय विचारधारा को उन्होंने अपनाया। स्वामी रामानंद तीर्थ के साथ हैदराबाद मुक्ति संग्राम में शरीक हुए। सशस्त्र क्रांति से संपूर्ण क्रांति तक का अनुभव लिया।

बसमतनगर नगर परिषद के सर्वसम्मति से नगराध्यक्ष बने। सर्वसम्मति से ही सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष, सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के अध्यक्ष को अच्छी तरह संभाला है। संगठन ही अहिंसक क्रांति की पहचान है, इस कसौटी पर उन्होंने अपने को सिद्ध किया। गीताई, गीता-प्रवचन को उन्होंने अपना अध्यात्म का आधार बनाकर उसे सामान्य जनों तक पहुंचाने का प्रयास किया। केलीपेडी जैसे ग्रामदानी गांवों में ग्राम शांति सेना शिविर चलाये। मराठवाड में ग्रामाभिमुख खादी को गति प्रदान की। देश में कई जगह ग्रामस्वराज सघन क्षेत्र बनाकर रचनात्मक कार्यो को सर्वोदय आंदोलन में दाखिल करने का प्रयास किया। ग्रामस्वराज से लेकर हिन्द स्वराज तक जनजागरण के कार्य वे आखिर तक करते रहे।

आचार्य विनोबा की अमृत वाणी और पू. सानेगुरुजी की सिद्धहस्त लेखनी से धुलियां जेल में साकार हुआ 'गीता प्रवचन' यह कार्यकर्ताओं के लिए संजीवनी है। चातुर्मास में प्रसाद काका मंदिर में गीता-वचन पाठ चलते थे। अध्यात्म अपने जीवन में उतारने का सही मार्ग उन्होंने अमल में लाया था।

1974 में तरुण शांति सेना का कार्य जयप्रकाशजी ने स्थगित किया तब से 1994 तक प्रसाद काका ने महात्मा गांधी के नाम से कई जगह युवा शिविरों का सिलसिला चलाया। आज गांधीजी के 150वें वर्ष में गांधी विचार के उपक्रम चलाने में हमारे साथ वे नहीं हैं, यह दुख की बात है। 1994 में सेवाग्राम में सर्वोदय के अग्रगण्य साथियों ने राष्ट्रीय युवा संगठन बनाने में प्रसाद काका अग्रसर थे। आखिर तक उनका मार्गदर्शन युवा साथियों को मिलते रहा।

संपूर्ण क्रांति का बिगुल बजाकर लोकनायक जयप्रकाश 1979 में हमारे से निकल गये। तब से गंगा प्रसाद जी युवकों के शिविर चलाकर प्रेरणास्रोत बने रहे। अब हमारे लिए जेपी के बाद प्रसाद काका सब कुछ थे। एक बार प्रसाद काका ने जोर से हंसकर पीठ पर धमाका मारा। ऐसे कई प्रसंगों में युवकों के पीठ पर धमाका देकर अनेक युवकों को प्रोत्साहित करके सर्वोदय परिवार में दाखिल किया है, जो आज तक कार्यरत हैं। पक्षतंत्र समाप्त होने पर सच्चा लोकतंत्र प्रारंभ होगा। राजनीति की जगह लोकनीति का अवतरण होगा। ग्राम स्वावलंबन से ग्रामस्वराज्य हासिल करने के लिए 'गणसेवकत्व' निर्माण की आवश्यकता है। अब कोई नेता निर्माण होगा और वह सबका उद्धार करेगा, ऐसे भ्रम में ना रहें। उसके लिए युवा कार्यकर्ताओं ने अपना-अपना कार्यक्षेत्र चयन करके 'सघन क्षेत्र' निर्माण करना चाहिए। वह सघन क्षेत्र कार्यकर्ताओं का प्रभाव क्षेत्र बनाकर नवसमाज निर्मिति का रास्ता दिखायेगा।

आचार्यकुल द्वारा गांधी सप्ताह में उमरखेड से गांधी कथा ओर 'मैं कस्तूरबा बोल रही हूं' इस मंगला सरोदे द्वारा प्रसृत एक प्रयोग के लिए आशीर्वाद लेने हम प्रसाद काका को मिलने गये। तब भीष्माचार्य जैसे शरपंजरी पड़े हुए प्रसाद का नांदेड में डॉ. काबे के अस्पताल में इच्छा-मरण मांग रहे थे। पुकारने पर आंख खोलकर देखते थे, लेकिन नयन उसपार लगे हुए थे। जयप्रकाशजी 11 अक्टूबर के जन्मदिन पर बसमत नगर में गंगाप्रसाद जी ने आखिरी सांस ली। 'जेपी' के बाद 'जीपी' हमारे साथ थे। अब जीपी के बाद कौन? गंगाप्रसाद अग्रवाल जी ने देश में युवाशक्ति जागरण करके अपनी बागडोर युवासाथियों के हाथों में सौंपी है। अधूरा रहा संपूर्ण क्रांति का सपना साकार करने में जुड़ जाना ही कर्मयोगी प्रसाद काका के लिए सही श्रद्धांजलि सिद्ध होगी। प्रसाद काका ने अपने जीवन कार्य से सबके सामने अपना आदर्श रखा है।

'अपने वतन के खातिर, हम जान लुटा देंगे, गर मर भी जायें तो घरबराना कैसा, हिम्मत से काम लेंगे, घबराना कैसा।।'' **–सुहास सरोदे**

कविता

युगपुरुष गांधी

❑ शिवमंगल सिंह 'सुमन'

कितनी सदियों के पुण्य फले,
तब तुम आये,
धरती के जागे भाग
मुक्ति के घन छाये;
सौभाग्य हमारा हाड़-मांस का
तन धरते
अपने-सा ही तुमको देखा
चलते-फिरते!
विश्वास हो गया
राम-कृष्ण की गाथा पर
अमिताभ और ईसामसीह की
भाषा पर;
तुमको बिन देखे
कथा कहानी-सी लगती!
तुम शुद्ध सत्य उद्घोष
असर आराती पर,
प्रज्वलित शिखा-सी
अंधकार की छाती पर;
विचरे, विह्वल मानवता को
पावन करने
करुणा के गंगाजल में
मंगलघट भरने!
अनगिनत निरीहों की
आशा
मूकों की भाषा बन आये,
मानवता की खोई आस्था
लौटा लाये,
कहने को तो हम
आत्मशक्ति के विश्वासी,
आस्तिकता की निष्ठा
सजीव निष्काम कर्म के
अभ्यासी, पर
चलती-फिरती क्षमा-दया
जब घर आयीं,
निर्भय निष्ठा,
विगलित करुणा
तामसी-शक्ति से टकरायी,
बौखला उठा तब
धर्मधुरीणों का समाज
हम भूल गये सब
ज्ञान-ध्यान पूजा-नमाज!
साधना सिद्धमय पुनश्चरण के
मंत्र पढ़े मीठे,
मानव-संस्कृति के
स्वर्ण-कमल
पर रक्तबिन्दु
हमने छींटे!!
प्रार्थना हमारी
प्रायश्चितों से पूरित,
हे क्षमामूर्ति,
मानव के सिंधुमंथन के
ओ सुधाकलश!
क्या हम जैसे
अकृतज्ञों को
अपनाओगे? ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : अशोक मोती।